



चतुरसेन-साहित्य—एक सौ दसवाँ ग्रन्थ

चतुरसेन की कहानियाँ—नवीं पुस्तक

लालारुख

(मुग़ल ऐश्वर्य और कोमल भावुकता से लबालब हैं कहानियाँ)

१—काला रुख

२—बावर्चिन

३—सोया हुआ शहर

४—नूरजहाँ का कौशल

५—दे खुदा की राह पर

६—पतिता

लालारुख

लेखक

आचार्य चतुरसेन

सम्पादिका

कमल किशोरी

प्रकाशक

ज्ञानधाम-प्रतिष्ठान

दिल्ली (शाहदरा)

वितरण केन्द्र

चतुरसेन-गृह

दिल्ली — काशी — पटना

१९५२

सवा रुपया

प्रकाशक
श्री चन्द्रसेन
सेक्रेटरी, ज्ञानधाम-प्रतिष्ठान
दिल्ली (शाहादरा)

मुद्रक
चिनगारी प्रेस,
बनारस–१.

लाला रुख़

[इस कहानी में एक कोमल भावुक प्रेम का मोहक रेखा चित्र है। मुगल कालीन ऐश्वर्य की एक सजीव झांकी भी इस कहानी में दिखाई देती है। कथोप कथन की समर्थ पद्धति और भाषा की ललक इस कहानी में देखे ही बनती है। कहानी पढ़ने के समय पाठक पाठिकाओं को एक ऐसे भाव समुद्र में तुरन्त डूब जाना पड़ता है, जो अतिशय सुखद है। प्यार की एक उदग्र मूर्ति इस कहानी में लाला रुख़ के रूप में व्यक्त हुई है]

१

उस दिन दिल्ली की बाजार में बड़ी धूम थी। चारों तरफ चहल पहल ही नजर आती थी। घर घर में जलसे हो रहे थे, और जशन मनाया जा रहा था, बाजार सजाए गए थे! खासकर चाँदनी चौक की सजावट आँखों में चकाचौंध उत्पन्न करती थी। असल बात यह थी कि बादशाह आलमगीर की दुलारी छोटी शाहजादी लाला रुख़ का ब्याह बुखारे के शाहजादे से होना तय पा गया था। इसके साथ ही यह बात भी तमाम दरबारियों और बुखारा के एलचियों से सलाह मशविरा करके तय पा गई थी, खास तौर से बुखारा के शाहज़ादे ने इस बात पर पूरा जोर दिया था कि उसे कश्मीर के दौलतखाने में शाहज़ादी का इस्तक़बाल करने की इजाजत दी जाय, और बादशाह ने इस बात को मंजूर कर लिया था। उस दिन लाला रुख़ की

सवारी दिल्ली के बाजारों में होकर कश्मीर जा रही थी, और दिल्ली शहर की यह सब तैयारियाँ इसी सिलसिले में थीं। जिन सड़कों से सवारी जानेवाली थी, उन पर गुलाब और केवड़े के अर्क का छिड़काव किया गया था। दुकानों की सब कतारें फूलों से सजाई गई थीं। जगह जगह पर मौलसरी और बेले के गजरों से बन्दनवार बनाए गए थे। बजाजों ने कमखबाब और जरबफ्त के थानों को लटका कर खूबसूरत दरवाजे तैयार किए थे, जौहरी और सुनारों ने सोने चान्दी के जेवरों और जवाहरात के क़ीमती जिंसों से अपनी दूकान के बाहरी हिस्से को सजाया था। इंतिज़ाम के दारोग़ा और बरकंदाज़ लाल-लाल वरदियाँ पहने और ज़री की पगड़ियाँ डाटे घोड़ों पर और पैदल इन्तिज़ाम के लिए दौड़ धूप कर रहे थे। छज्जों और छतों पर लाला रुख़ की सवारी देखने के लिए ठठ की ठठ औरतें आ जुटी थीं। परदा नशीन बड़े घर की औरतें चिलमनों की आड़ में खड़ी होकर लाला रुख़ की सवारी देखने का इन्तिज़ार कर रही थीं। नजूमियों और ज्योतिषियों से लाला रुख़ की विदाई का महूरत दिखा लिया गया था। ठीक मूहूरत पर लाला रुख़ की सवारी लाल क़िले से रवाना हुई। सबसे आगे शाही सवारों का एक दस्ता हाथ में नंगी तलवारें लिए चल रहा था। उसके बाद जर्क बर्क पोशाक पहने हाथ में बड़े बड़े भाले लिए, बरकंदाजों का एक झुण्ड था। इसके बाद तातारी बाँदियाँ तीर कमान कमर में कसे और नंगी तलवार हाथ में लिए, जड़ाऊ कमर पेटी में खंजर खोंसे, तीखी निगाहों से चारों तरफ़ देखती हुई, आगे बढ़ रहीं थीं। इसके बाद झूमते हुए, शाही हाथी थे, जिन पर ज़रदोज़ी की सुनहरी झूलें

.ड़ी हुई थीं, और जिनकी सोने की अम्बारियाँ सुनहरी धूप में चम चमा रही थीं। इनमें महीन रेशमी जालों के पर्दे पड़े हुए थे, जिन में शाहज़ादी लाला रुख की सहेलियाँ, उस्तानियाँ, मुगलानियाँ और रिश्ते की दूसरी शाही औरतें थीं। इनके पीछे नक़ीबों की एक फौज थी, जो चिल्ला-चिल्ला कर हुजूर शाह-ज़ादी की सवारी की आमद लोगों पर ज़ाहिर कर रही थी। इसके बाद खास बान्दियों और महरियों के पैदल झुरमुट में कीमती, जड़ाऊ सुखपाल में शाहज़ादी लाला रुख बैठी थी। एक विश्वास पात्री बांदी पीछे खड़ी शाहज़ादी पर धीरे-धीरे पंखा झल रही थी। सुखपाल पर गुलाबी रंग के निहायत खूब-सूरत, मकड़ी के जाले की तरह महीन पर्दे पड़े हुए थे। इनके पीछे घोड़े पर सवार एक सरदार खोजा फिदाहुसैन था, और उसके पीछे मुग़ल सरदारों का एक मज़बूत दस्ता। इसके बाद रसद, डेरे तम्बू और बल्लियों से लदे हुए बहुत से ऊँट खच्चर हाथी तथा बेलदार मज़दूर चल रहे थे।

२

लाला रुख का सौन्दर्य अप्रतिम था, और उसके कोमल तथा भावुक खयालातों की ख्याति देश देशान्तरों तक फैल गई थी। देश देशान्तरों के शाहज़ादे उसे एक बार देखने को तरसते थे। उसका रंग मोतियों के समान था, उसकी आभा और शरीर की कोमलता केले के नए पत्ते के समान थी। उसके दांत हीरे के से, और आँखें कच्चे दूध के समान उज्ज्वल और निर्दोष थीं। उसका भोलापन और सुकुमारता अप्रतिम थी,



और निर्मम आलमगीर, जो प्रेम की कोमलता से दूर रहा, इस अपनी नन्हीं और भोली बेटी को सचमुच प्यार करता था। उसने अपने हाथों से सहारा देकर उसे सुखपाल में सवार कराया, और आँखों में आँसू भरकर विदा कराया।

सवारी जब दिल्ली की सीमा पार करके लहलहाते खेतों, जंगलों और पहाड़ियों पर पहुँची, तो लाला रुख़ ने अपने नाज़ुक हाथों से पर्दा हटा कर एक नज़र दूर तक फैली हुई हरियाली पर डाली, और जो कुछ भी उसने देखा, उससे बहुत खुश हुई। आज तक उसे जंगल की हरयाली देखने का मौक़ा नहीं मिला था, शाही महल के झरोखों से भी वह झांक न पाती थी। शाही महल की तड़क भड़क और बनावट से वह ऊब गई थी, इसलिए जंगल का दृश्य देख कर उसके मन में आनन्द होना स्वाभाविक था। नए नए दृश्य उसकी आँखों के आगे आते-जाते थे। रंग विरंगे फूलों से लदे हुए वृक्ष और लताएँ, स्वच्छन्दता से चौकड़ी भरते हुए हिरनों के झुण्ड, चह-चहाते हुए भांति भांति के पक्षी उसके मन में कौतूहल पैदा कर रहे थे। वह उत्फुल्ल नेत्रों से प्रकृति की शोभा निहारती हुई और भांति भांति के विचारों तथा शंका से उद्विग्न सी आगे बढ़ रही थी। हर दस कोस पर पड़ाव पड़ता था।

एक दिन जब सुदूर पश्चिम और उत्तर के आकाश की क्षितिज रेखा में हिमालय की धवल चोटियाँ प्रातःकाल की सुनहरी धूप किरणों से चमककर, देखनेवालों के नेत्रों में चमत्कार पैदाकर रही थीं, और शीतल मन्द सुगंध वासन्ती वायु गुदगुदाकर मन को प्रफुल्ल कर रही थी! लाला रुख़ अपने खीमे में, रेशम के कोमल गद्दे और तकियों में अलसाईसी पड़ी

हुई, अपने अज्ञात यौवन से बिल्कुल बेखबर हो कर, अपनी सहचरियों से सुरम्य कश्मीर की सुषमा का बखान सुन रही थी। महलसरा के खोजा दारोगा ने सामने आकर कोर्निश की, और अर्ज़ की कि कश्मीर से बुखारे के नामवर शाहज़ादे ने हुजूर शाहज़ादी की खिदमत में एक नामी गवैए को भेजा है, और वह ड्योढ़ियों पर हाजिर होकर क़दमबोसी की इजाज़त से सरफ़राज़ होना चाहता है।'

'लाल रुख का चेहरा शर्म से लाल हो गया। उसने कनखियों से अपनी एक सखी की ओर देखा, और फिर मुस्कुराकर वीणा के झंकार स्वर में कहा! 'क्या वह सिर्फ गवैया है।'

'नहीं हुजूर, वह एक नामी शायर भी है, और उसकी कविता की भी वैसी ही धूम है, जैसी उसके गान की।'

'क्या वह बुखारे का बाशिंदा है।'

'नहीं हुजूर, वह कश्मीर का रहने वाला है। वह एक कमसिन खूबसूरत और निहायत बाअदब नौजवान है।'

'शाहजादी ने एक बार दारोगा की तरफ देखा, और पूछा 'क्या कह सकते हो कि शाहजादे के साथ उसके किस प्रकार के ताल्लुकात है।'

'जी हाँ, तहकीक़ात से मालूम हुआ कि हजरत शाहजादे के साथ इस नौजवान के बिलकुल दोस्ताना ताल्लुकात है।'

'क्या शाहज़ादे ने कुछ तकीद भी लिख भेजी है।'

'जी-हाँ हुजूर, उन्होंने लिखा है कि मैं अपने जिगरी दोस्त इब्राहीम को शाहजादी का इस्तकबाल करने और उन्हें गाने

तथा कविता से खुश करने को भेजता हूँ। शाहजादी को उनसे पर्दा करने की जरूरत नहीं।'

शाहजादी नीची नजर करके मुस्किराई, और धीमे स्वर से कहा 'बहुत खूब' शाहजादेके दोस्त का हर तरह आराम से रहने का इतिजाम कर दो।' इतना कहकर वह जल्दी से ख्वाबगाह में चली गई, और ख्वाजा सरा कोर्निश करके बाहर आया।

२

कहीं बदली छा रही थी। कश्मीर की घाटियों में लालारुख की छावनी पड़ी थी। चारों तरफ सुहावने दृश्य थे। दूर पर्वत श्रेणियाँ शोभा बखेर रहीं थीं। चाँदनी छिटकी थी, और वह बदली में छन छनकर धरती पर बिखर रही थी। लालारुख ने सुना, कोई वीणा के मधुर झंकार के साथ वीणा विनिंदित स्वर में मस्ताना गीत गा रहा है। उस प्रशांत रात्रि में उस सुमधुर गायन और उसके प्रेम भावना पूर्ण शब्दों से लालारुख प्रभावित हो गई। उसने प्रधान दासी को बुलाकर कहा "कौन गा रहा है।"

"वही कश्मीरी कवि है।"

"बड़ा प्यारा गीत है।"

"और वह गायक उससे भी ज्यादा प्यारा है।"

"क्या वह बहुत खूबसूरत है।"

"मगर हुजूर के तलुओं योग्य भी नहीं।"

"लालारुख मुस्किराई। उसने कहा "किसी को भेजकर उसे कहला दो, जरा नजदीक आकर गावे।"

"बांदी "जो हुक्म" कहकर चली गई। और कुछ क्षण बाद ही मूर्तिमती कविता और संगीत की मधुर धार उस भावुक शाहज़ादी के मानस सरोवर में हिलोरें लेने लगी।

वह सोचने लगी, जिसका कंठ स्वर इतना सुंदर है, और जिसका भाव इतना मधुर है, वह कितना सुंदर होगा। शाहज़ादी की इच्छा उसे एक बार आँख भरकर देख लेने की हुई। शाहज़ादे ने कहला भेजा था कि उससे पर्दा न किया जाय। परन्तु शाहज़ादी इतनी हिम्मत न कर सकी। उसने प्रधान दासी के द्वारा कवि से कहला भेजा कि वह नित्य इसी भाँति शाहज़ादी के लिए गाया करे, तो शाहज़ादी उसका एहसान मानेगी। उस दिन से दिन भर शाहज़ादी उस अमूर्त संगीत के रूप की कल्पना विविध भाँति करने लगी, और जब वह स्वर्ण क्षण आता, तो उस स्वर सुधा में मस्त हो जाती।

कश्मीर धीरे धीरे निकट आ रहा था। शाहज़ादे से मिलने का दिन निकट आ रहा था। तमाम कश्मीर में शाहज़ादी के स्वागत की बड़ी भारी तैयारियाँ हो रही हैं, इसकी खबर रोज़ शाहज़ादी को लग रही थी, पर शाहज़ादी का दिल धड़क रहा था। क्या सचमुच यह अमूर्त संगीत एक दिन विलीन हो जायगा। धीरे धीरे शाहज़ादी के मन में साक्षात् करने की इच्छा बलवती होने लगी।

शालामार की सुन्दर और स्वर्गीय छटा अवलोकन करती हुई लालारुख अनमनी सी बैठी थी। अब वह उस अमूर्त के दर्शन से नेत्रों को धन्य किया चाहती थी। उसने उस स्निग्ध चाँदनी के एकान्त में उस कवि को बुला भेजा था। हाथ में वीणा लिए जब उसने घुटने टेककर शाहज़ादी को अभिवादन किया, तब

क्षण भर के लिए शाहज़ादी स्तंभित रह गई। उसके होंठ कांपकर रह गए, बोल न सकी। कवि ने कहा "हुजूर, शाहज़ादी ने गुलाम को रूबरू हाजिर होने का हुक्म देकर उसे निहाल कर दिया।"

"मैं, मैं तुम्हें बिना देखे न रह सकी।"

"शाहज़ादी का क्या हुक्म है।"

"एक बार इस चांदनी में मेरे सामने बैठकर वही प्यारा संगीत गा दो।"

"जो हुक्म।"

कवि की उँगलियों ने तारों में कंपन उत्पन्न किया, साथ ही कंठ का मधु प्रवाहित हुआ, शाहज़ादी उसमें खो गई। गाना खत्म कर, कवि ने साहस करके मुग्धा राजकुमारी का कोमल कर अपने होंठों से लगा लिया। शाहज़ादी चीख उठी, उसने अपना हाथ खींच लिया, पर दूसरे ही क्षण उसने कहा "ओह" इब्राहीम, मैं तुम्हारे बिना नहीं जी सकती। "और, वह मूर्च्छित होकर कवि पर झुक गई।

४

शालामार बाग में शाहज़ादी ने कुछ दिन मुकाम करने की इच्छा प्रकट की। कश्मीर से शाहज़ादे के तक़ाज़े आ रहे थे कि जल्द सवारी आवे, पर शाहज़ादी शाहज़ादे के पास जाते घबराती थी, वह अपना हृदय कवि को दे चुकी थी। वैसी ही चांदनी थी, संगमरमर की एक पटिया पर दोनों प्रेमी बैठे थे। फूलों का ढेर और शीराजी सामने रक्खी थी। शाहज़ादी ने कहा "प्यारे इब्राहीम, इस क़दर मुतफिक्र क्यों हो।"

"शाहज़ादी, हम जो कुछ कर रहे हैं, उसका अंजाम क्या होगा। शाहज़ादा जब यह भेद जान लेंगे, तो हमारी जान की ख़ैर नहीं। मुझे अपनी जरा परवा नहीं, पर आपको उस प्रलय में मैं न देख सकूँगा।"

"ओह इब्राहीम; शाहज़ादे बहुत उदार हैं, वह समझते होंगे मुहब्बत में किसी का जोर जुल्म नहीं चलता। वह हमें माफ़ कर देंगे।"

"नहीं शाहज़ादी, वह तुम्हें अपनी जान से ज्यादा चाहते हैं माफ़ न करेंगे।"

"तो इब्राहीम, मैं ख़ुशी से तुम्हारे साथ मरूँगी। क्या तुम मौत से डरते हो।"

"नहीं दिलरुबा, और खासकर इस प्यारी मौत से।"

"तो फिर यह राज क्यों पोशीदा रक्खा जाय, शाहज़ादे को लिख दिया जाय।"

"ये तमाम ठाट बाट हवा हो जायेंगे।"

"उसकी परवाह नहीं, तुम मेरे सामने बैठकर इसी तरह गाया करना, मैं तुम्हारे लिए रोटियाँ पकाया करूँगी।"

"प्यारी शाहज़ादी। बेहतर हो, इस ग़ुलाम को भूल जाओ।"

"ऐसा न कहो, यह कलमा सुनने से दिल धड़क उठता है।"

"तो फिर तुम्हारा क्या हुक्म है।"

"शाहज़ादे को मैं सब हक़ीक़त लिख भेजूँगी।"

"तुम क्यों, यह काम मैं करूँगा, फिर नतीजा चाहे भी जो हो।"

क्षण भर के लिए शाहजादी स्तंभित रह गई। उसके होठ काँपकर रह गए, बोल न सकी। कवि ने कहा "हुजूर, शाहजादी ने गुलाम को रूबरू हाजिर होने का हुक्म देकर उसे निहाल कर दिया।"

"मैं, मैं तुम्हें बिना देखे न रह सकी।"

"शाहजादी का क्या हुक्म है।"

"एक बार इस चांदनी में मेरे सामने बैठकर वही प्यारा संगीत गा दो।"

"जो हुक्म।"

कवि की उँगलियों ने तारों में कंपन उत्पन्न किया, साथ ही कंठ का मधु प्रवाहित हुआ, शाहजादी उसमें खो गई। गाना खत्म कर, कवि ने साहस करके मुग्धा राजकुमारी का कोमल कर अपने होठों से लगा लिया। शाहजादी चीख उठी, उसने अपना हाथ खींच लिया, पर दूसरे ही क्षण उसने कहा "ओह" इब्राहीम, मैं तुम्हारे बिना नहीं जी सकती। "और, वह मूर्छित होकर कवि पर झुक गई।

४

शालामार बाग में शाहजादी ने कुछ दिन मुकाम करने की इच्छा प्रकट की। कश्मीर से शाहजादे के तकाजे आ रहे थे कि जल्द सवारी आवे, पर शाहजादी शाहजादे के पास जाते घबराती थी, वह अपना हृदय कवि को दे चुकी थी। वैसी ही चांदनी थी, संगमरमर की एक पटिया पर दोनों प्रेमी बैठे थे। फूलों का ढेर और शीराजी सामने रक्खी थी। शाहजादी ने कहा "प्यारे इब्राहीम, इस क़दर मुतफ़िक्र क्यों हो।"

"शाहज़ादी, हम जो कुछ कर रहे हैं, उसका अंजाम क्या होगा। शाहज़ादा जब यह भेद जान लेंगे, तो हमारी जान की खैर नहीं। मुझे अपनी जरा परवा नहीं, पर आपको उस प्रलय में मैं न देख सकूँगा।"

"ओह इब्राहीम; शाहज़ादे बहुत उदार हैं, वह समझते होंगे मुहब्बत में किसी का जोर जुल्म नहीं चलता। वह हमें माफ़ कर देंगे।"

"नहीं शाहज़ादी, वह तुम्हें अपनी जान से ज्यादा चाहते हैं माफ़ न करेंगे।"

"तो इब्राहीम, मैं खुशी से तुम्हारे साथ मरूँगी। क्या तुम मौत से डरते हो।"

"नहीं दिलरुबा, और खासकर इस प्यारी मौत से।"

"तो फिर यह राज क्यों पोशीदा रक्खा जाय, शाहज़ादे को लिख दिया जाय।"

"ये तमाम ठाट बाट हवा हो जायेंगे।"

"उसकी परवाह नहीं, तुम मेरे सामने बैठकर इसी तरह गाया करना, मैं तुम्हारे लिए रोटियाँ पकाया करूँगी।"

"प्यारी शाहज़ादी। बेहतर हो, इस गुलाम को भूल जाओ।"

"ऐसा न कहो, यह कलमा सुनने से दिल धड़क उठता है।"

"तो फिर तुम्हारा क्या हुक्म है।"

"शाहज़ादे को मैं सब हक़ीक़त लिख भेजूँगी।"

"तुम क्यों, यह काम मैं करूँगा, फिर नतीजा चाहे भी जो हो।"

५

"इब्राहीम के गिरफ्तार होने की खबर आग की तरह शाहज़ादी के लश्कर में फैल गई। शाहज़ादी ने सुना, तो पागल हो गई। खाना पीना छोड़ दिया। सवारी तेजी के साथ आगे बढ़ने लगी। ज्यों ज्यों कश्मीर नजदीक आता था, सजावट और स्वागत की धूमधाम बढ़ती जाती थी। परन्तु शाहज़ादी बदहवास थी। शहर में उसका बड़ी धूमधाम से स्वागत हुआ। और, जब महल के फाटक में उसकी सवारी घुसी, तो उस पर हीरे मोती बखेरे गए। शाहज़ादी ने पक्का इरादा कर लिया था कि ज्यों ही वह शाहज़ादे के सामने पहुँचेगी, उसके कदमों पर गिर कर इब्राहीम की जान बख्शी की भीख माँगेगी।

"शाहज़ादा जड़ाऊ तख्त पर बैठा शाहज़ादी के स्वागत करने की प्रतीक्षा कर रहा था। उसके बगल में एक दूसरा जड़ाऊ तख्त शाहज़ादी के लिए पड़ा था। शाहज़ादी ने ज्यों ही हवादान से पैर निकाला, शाहज़ादा उसे देखकर अवाक् रह गया। बिखरे बाल, मलिन वेश, सूखा और पीला चेहरा और सूजी हुई आँखें। शाहज़ादी ने आँख उठाकर शाहज़ादे को नहीं देखा, वह आगे बढ़कर तख्त के नीचे ज़मीन पर लोट गई। उसने शाहज़ादे के पैर पकड़ कर कहा "क्षमा, क्षमा ओ उदार शाहज़ादे क्षमा।"

शाहज़ादे ने कहा "उठो शाहज़ादी, तुम्हारे लिए सब कुछ किया जा सकता है, यह तुम्हारा तख्त है, इस पर बैठो।"

शाहज़ादी ने डरते डरते आँखें उठाकर शाहज़ादे की ओर देखा "य: ख़ुदा" इतना ही उसके मुँह से निकला, और वह शाहज़ादे की गोद में बेहोश होकर लुढ़क गई।

६

"हां, तो तुम इब्राहीम की जां बख्शी चाहती हो प्यारी।"

"हां प्यारे, तुम इब्राहीम को जानते हो ?"

"कुछ कुछ।"

दोनों ठहाका मारकर हँस पड़े। लालारुख ने शाहज़ादे की गोद में मुँह छिपा लिया।

बावर्चिन

[एक बार मुग़ल साम्राज्य का प्रताप सूर्य मध्याकाश में तपकर अपने काल में विश्वभर में अप्रतिम तेज विस्तार कर गया था। मुग़ल दर्बार का रुआब, दबदबा, और शान शौकत कभी अवर्ण्य थी, परन्तु जब उसके अस्त होने का समय आया तो उसकी दशा ऐसी दयनीय हो गई जिसकी करुण कहानी आँसुओं के समुद्र में डूब गई। इस कहानी में अन्तिम मुग़ल सम्राट् बहादुरशाह के पतन काल का और मुग़ल बेगमात के आँसुओं का जो कभी केवल हीरे मोती इत्र और ऐश्वर्य ही को जानती थी ऐसा कठोर रेखा चित्र है, जो हृदय में घाव कर जाता है। साम्राज्यों के पतन में विश्वासघातियों का सदा हाथ रहा है इस में भी एक ऐसे ही विश्वास घाती का संकेत किया गया है जिस के बड़े-बड़े वर्णन मुग़लतख़्त के पतन काल में इतिहास में पाए गए हैं।]

१

सन् १८४५ की २८वीं मई के तीसरे पहर एक पालकी चाँदनी चौक में होकर लाल क़िले की ओर जा रही थी। पालकी बहुमूल्य कमख़्वाब और ज़री के पर्दों से ढँकी हुई थी। आठ कहार उसे कन्धों पर उठाए थे और १६ तातारी बाँदियाँ नङ्गी तलवार लिए उसके गिर्द चल रही थीं। उनके पीछे ४० सवारों का एक दस्ता था, जिसका अफ़सर एक कुम्मेत अरबी घोड़े पर चढ़ा हुआ था। उसकी ज़रबफ़्त की बहुमूल्य पोशाक पर कमर

में नाजुक तलवार लटक रही थी, जिसकी मूँठ पर गङ्गाजमुनी काम हो रहा था। उसकी काली घनी डाढ़ी के बीच, अङ्गारे की तरह दहकते चेहरे में मशाल की तरह जलती हुई आँखें चमक रही थीं, जिन्हें वह चारों तरफ घुमाता हुआ, अकड़ कर, किन्तु खूब सावधानी से पालकी के पीछे-पीछे जा रहा था।

भयानक गर्मी से दिल्ली तप रही थी। तब चाँदनी चौक की सड़कें आज की जैसी तारकोल बिछी हुई आईने की तरह चमचमाती न थीं, न मोटरों की पोंपों-पोंपों और सरोटिमन्द दौड़ थी। चाँदनी चौक की सड़कों पर काफी गर्द-गुब्बार रहता था। हाथी, घोड़े, पालकी और नागौरी बैलों की जोड़ी से ठुमकती हुई बहलियाँ एक अजब बाँकी अदा से उछला करती थीं।

अब जिस स्थान पर घण्टाघर है, वहाँ तब एक बड़ा सा हौज था, जो चाँदनी चौक की नहर से मिल गया था, और जहाँ कम्पनी बाग़ और कमेटी की लाल सङ्गीन इमारत खड़ी है, वहाँ एक बड़ी भारी किन्तु खस्ताहाल सराय थी, जिसकी बुर्जियाँ टूट गई थीं और जहाँ अनगिनती खच्चर, टट्टू, बैलगाड़ियाँ, घोड़े और परदेशी बेतरतीबी से पेड़ों के नीचे या बेमरम्मत कोठरियों में भरे हुए थे।

जिस समय पालकी वहाँ से गुजर रही थी, उस समय हौज़ पर खासा धोबी-घाट लगा हुआ था। कोई नहा रहा था, कोई साबुन से कपड़े धो रहा था। सराय के टूटे किन्तु सङ्गीन फाटक पर देशी-विदेशी आदमियों का जमघट लगा था!

पालकी अवश्य ही कहीं दूर से आ रही थी। कहार लोग पसीने से लथपथ हो रहे थे, उनका दम फूल रहा था और वे लड़खड़ा रहे थे। पीछे से अफसर तेज़ चलने की ताकीद कर

रहा था, मगर ऐसा मालूम होता था कि अब और तेज़ चलना असम्भव है।

कहारों में एक बूढ़ा कहार था, उसका हाल बहुत ही बुरा हो रहा था। कुछ क़दम और चल कर वह ठोकर खाकर गिर पड़ा, पालकी रुक गई।

तातारी बाँदियाँ झिझक कर खड़ी हो गईं। अफ़सर ने घोड़ा बढ़ाया। बूढ़ा अभी सँभला न था। एक चाबुक सपाक से उसकी गर्दन और कनपटी की चमड़ी उधेड़ गया। साथ ही बिजली की कड़क की तरह उसके कान में शब्द पड़े—उठ, उठ, ओ दोज़ख के कुत्ते! देर हो रही है।

कहार ने उठने की चेष्टा की, पर उठ न सका। वह गिर गया। गिरते ही दस-बीस, पचीस-पचास चाबुक तड़ातड़ पड़े, खून का फ़व्वारा छूटा और कहार का जीवन-प्रदीप बुझ गया!!

लाश को पैर की ठोकर से ढकेल कर अफ़सर ने खूनी आँख भीड़ पर दौड़ाई। एक गठीला गौरवर्ण युवक मैले और फटे वस्त्र पहने भीड़ में सबसे आगे खड़ा था। मुश्किल से रेखें भीगी होंगी। अफ़सर ने डपट कर उसे पालकी उठाने का हुक्म दिया। युवक आगे बढ़ा। दूसरे ही क्षण सपाक से एक चाबुक उसकी पीठ पर पड़ा और साथ ही ये शब्द—साला, जल्दी!

युवक ने क्रुद्ध स्वर में कहा—जनाब! हुक्म बजा लाता हूँ, मगर ज़बान सँभाल ×××

दस-बीस चाबुक खाकर युवक वहीं तड़प कर गिर गया। उसकी नाक और मुँह से खून का फ़व्वारा बह चला। अफ़सर ने और एक आदमी को कन्धा लगाने का हुक्म दिया। क्षण भर में पालकी फिर अपनी राह लगी।

२

चिराग जल चुके थे। दीवाने खास में हजारा फ़ानूस की तमाम काफ़ूरी मोमबत्तियाँ जल रही थीं। जमुना की लहरों से धुल कर पूर्वी हवा झरोखों से छन-छन कर आ रही थी। खास-खास दरबारी बादशाह सलामत के तशरीफ़ लाने की इन्तज़ारी में अदब से खड़े थे। सामने एक चौकी पर वही युवक लहू-लुहान पड़ा था। अन्तःपुर के झरोखों से परिचारिकाओं के कण्ठ-स्वर ने कहा—"होशियार, अदब क़ायदा निगहदार!" यह शब्द-स्वर चोबदारों ने दुहराया—"होशियार, अदब क़ायदा निगहदार!" उमरावमण्डल और मन्त्रि-मण्डल ज़मीन तक सिर झुका कर खड़ा हो गया। सम्पूर्ण दरबार में निस्तब्धता छा गई। धीरे-धीरे वृद्ध सम्राट् बहादुरशाह दो सुन्दरियों के कन्धों का सहारा लिए भीतरी ड्योढ़ी से निकल कर सिंहासन पर आ बैठे। चार बाँदियाँ मोरछल लेकर बगल में आ खड़ी हुईं। चोबदार ने पुकारा—"ज़िल्ले इलाही बरामद कर्दं मुजरा अदब से!"

यह सुनते ही एक उमराव सहमा हुआ अपने स्थान से आगे बढ़ा और सम्राट् के सामने जाकर उसने तीन बार झुक कर सलाम किया। चोबदार ने उसके रुतबे और शान के अनुसार कुछ शब्द कह कर सम्राट् का ध्यान उधर आकर्षित किया। इसी प्रकार सभी सरदारों ने प्रणाम किया।

इसके बाद बादशाह ने वज़ीर को सङ्केत किया। वज़ीर ने जवान से कहा—जवान! तुम्हारे हालात बादशाह सलामत

अगर्चे सुन चुके हैं, मगर तुम्हारी खास ज़बान से सुनना चाहते हैं। तमाम हालात मुफस्सिल में बयान करो।

युवक ने ज़मीन में लोट-लोट कर सब मामला बयान किया। बादशाह ने फ़र्माया—सब हरूफ़-बहरूफ सही है। कहाँ है वह जालिम ज़मीर?

वही खूँख्वार अफ़सर ज़मीर तख्त के सामने आकर घुटनों के बल गिर गया।

बादशाह ने फ़र्माया—ज़मीर! तुझे कुछ कहना है?

"खुदावन्द! रहम! रहम!"

बादशाह ने हुक्म दिया—इस ज़ालिम को सीधा खड़ा करो। मगर ठहरो, मैं इस पर भी रहम किया चाहता हूँ। इसे नौकरी से बरखास्त किया जाता है और इसका दर्जा इस नौजवान को अता किया जाता है। इसकी तमाम जायदाद ज़ब्त की जाती है और वह उस कहार के घर वालों को बख्श दी जाती है।

हुक्म देकर बादशाह उठे। तुरन्त चार बाँदियों ने सहारा दिया। दरबारी लोग ज़मीन तक झुक गए। बादशाह ने युवक के निकट आकर कहा—आराम होने तक शाही महलों में रहने को तुम्हें इजाज़त बख्शी जाती है और शाही हकीम तुम्हारे मालजे को मुक़र्रर किए जाते हैं।

युवक ने बादशाह की क़दमबोसी की और पल्ला चूमा। बादशाह धीरे-धीरे अन्तःपुर में प्रवेश कर गए।

२

अन्तःपुर के उन झरोखों के भीतर, जहाँ किसी भी मर्द की परछाईं पहुँचनी सम्भव न थी, एक बहुमूल्य मखमली गद्दे पर

वह घायल युवक पड़ा अपने भाग्य-विकास की बात सोच रहा था। एक ही दुखदाई घटना ने, जिसे शायद ही कोई निमन्त्रित करे, उसके भाग्य का पाँसा पलट दिया था। वह सोच रहा था, क्या सचमुच मेरे ये फटे चिथड़े, वह टूटा छप्पर का घर, वह माता का चक्की पीसना, सभी बदल जायगा। वह जागते ही जागते स्वप्न देखने लगा—एक धवल अट्टालिका, दास-दासी, घोड़े-हाथी, सेना और न जाने क्या?

सभी विचार-धाराओं के ऊपर उसे एक नवीन विचार-धारा मूर्च्छित कर रही थी—वह कौन है? वही क्या इस सब भाग्य-परिवर्त्तन की कुंजी नहीं? पालकी के उस दुर्भेद्य पर्दे के भीतर × × ×! वह सोच में मूर्च्छित हो गया।

हठात् उसकी विचार-धारा को धक्का देते हुए कक्ष का पर्दा हटा कर दो दासियों के साथ एक ख्वाजे ने प्रवेश किया। दासियों के हाथ में भोजन की सामग्री थी। स्वप्न-सुख की तरह कहीं वह राजभोग लुप्त न हो जाय, घायल युवक इस भय से लपक कर उठा। ख्वाजे ने कहा—खाना खा लो, और खुदा का शुक्र करो। हुजूर शाहजादी तुम पर बहुत खुश हैं और वे जल्द तुम्हें देखने को तशरीफ लाने वाली हैं।

× × ×

चन्द्रमा की स्निग्ध ज्योत्स्ना की तरह शाहजादी ने कक्ष में प्रवेश किया। दो अल्प-वयस्का दासियाँ परछाईं की तरह उनके पीछे थीं। शुभ्र, महीन रेशमी परिधान पर जरदोजी और सलमें का बारीक काम निहायत नफासत से हो रहा था। वह अस्फुटित कुन्दकली के समान, कोमलता और माधुर्य की मूर्त्तिमती रेखा के समान समस्त भारत के सम्राट् की पौत्री शाहजादी गुलबानू थी।

केवल क्षण भर ही वह युवक उस अति दुर्लभ मुख की ओर देखने का साहस कर सका। उसने उठने की चेष्टा की, परन्तु मानो उसके शरीर का सत निकल गया था। वह गिर पड़ा, गिरे ही गिरे उसने ज़रा बढ़ कर अपना मस्तक शाहज़ादी के क़दमों पर रख दिया। शाहज़ादी के जूतों में लगे हीरे युवक के मस्तक पर मुकुट की तरह दिप उठे।

शाहज़ादी ने मानो फूल बखेर दिए। उसने कहा—कल के हादिसे का मुझे बहुत रञ्ज है, पर मैं समझती हूँ, अब तुम बहुत अच्छे हो। मैंने पालकी से तमाम माजरा देखा था, मगर कर क्या सकती थी? दादाजान से आते ही शिकायत कर दी थी।

युवक ने ज़रा ऊँचा उठ कर शाहज़ादी का आँचल आँखों से लगाया, और बारम्बार ज़मीन चूम कर कहा—हुजूर, खुदावन्द शाहज़ादी, कल अगर हुजूर की पालकी की खाक न नसीब होती तो आज यह दिन कहाँ? जहाँपनाह ने इस नाचीज़ गुलाम को निहाल कर दिया है। तावेदार ताउम्र इन क़दमों का नमकहलाल रहेगा।

शाहज़ादी कुछ न कह कर धीरे-धीरे चली गई, परन्तु उसके साँस की सुगन्ध वहाँ भर गई थी, और उसीके प्रभाव से युवक के घाव भर गए थे। वह उस स्थान को, जहाँ शाहज़ादी के कमल-पद छू गए थे, अपनी छाती से लगा कर बदहवास पड़ा रहा। वह मूर्त्ति चाहे क्षण भर ही वह देख सका था, पर वह उसके रोम-रोम में रम गई थी। पर दुनिया के पर्दे में कौन सा ऐसा कोई मर्द-बच्चा था, जो फिर उसे एक बार देख लेने का हौसला भी कर सकता?

४

१७ साल बीत गए। सन् ५७ की २४ वीं मई थी। गदर की आग धू-धू करके जल रही थी। चिनगारियाँ आसमान को छू चुकी थीं। निकल्सन ने दिल्ली पर घेरा डाल रक्खा था। भाग्य की रेखा के बल पर बूढ़े और लाचार बादशाह बहादुरशाह ने बागियों का साथ दिया था। क्षण-क्षण में बागी हार रहे थे। अङ्गरेज़ी तोपें काशमीरी दरवाज़े पर गरज रही थीं। लाहौरी दरवाज़ा सर हो चुका था। फतहपुरी मस्जिद के सामने अङ्गरेज़ी घुड़सवार और बागियों की लाल होली खेली जा रही थी। लाशों के ढेर में से अधमरे सिपाही चिल्ला रहे थे। अङ्गरेज बराबर बढ़ते और जो मिलता उसे सङ्गीनों से छेदते चले आ रहे थे। कर्नल वाट्सन के हाथ में कमान थी। इनके साथ थे एक सम्भ्रान्त मुसलमान अमीर जनाब इलाहीबख्श। वे एक अरबी नफ़ीस घोड़े पर पान चबाते, इतराते बढ़ रहे थे, लोग देख-देख कर भयभीत होकर घरों में छिप रहे थे।

यह इलाहीबख्श वही घायल युवक थे, जो अपनी जवाँमर्दी और चतुराई से १० वर्ष में बादशाह के अमीर और नगर के प्रतिष्ठित तथा प्रभावशाली व्यक्ति बन गए थे। अङ्गरेज़ों ने दमदार मुग़लों को जहाँ तोपों और सङ्गीनों की नोक से वश में किया था, वहाँ कुछ नमकहराम, सङ्गदिल लोगों को अपनी भेद-नीति और सोने के टुकड़ों से वश में कर लिया था।

इलाहीबख्श भी उनमें से एक थे। १० वर्ष पहले शाहज़ादी के क़दमों पर गिर कर नमकहलाली की जो बात उन्होंने कही थी, वह अब उन्होंने दरगुज़र कर दी थी। वे अब अङ्गरेज़ों के भेदिए थे।

दोनों व्यक्ति सराय के सामने जाकर ठहर गए। हौज़ के पास, जहाँ अब घण्टाघर है, बराबर-बराबर फाँसियाँ गड़ी थीं और क्षण-क्षण में चारों तरफ़ गली-कूचों से आदमी पकड़े जाकर फाँसी पर चढ़ाए जा रहे थे। कुछ खास क़ैदी इनकी प्रतीक्षा में बँधे बैठे थे। हडसन साहब ने सबको खड़ा होने का हुक्म दिया। इलाहीबख्श ने उनमें से मुग़ल-सरदारों और राज-परिवार वालों की सनाख्त की; वे सब फाँसी पर लटका दिए गए। इसके बाद, बादशाह क़िले से भाग गए हैं—यह सुन कर एक फ़ौज की टुकड़ी लेकर दोनों तीर की तरह रवाना हुए।

५

बादशाह सलामत जल्दी-जल्दी नमाज़ पढ़ रहे थे। उनके हाथ काँप रहे थे और आँखों से आँसुओं की धार बह रही थी। शाहज़ादी गुलबानू ने आकर कहा—बाबाजान! यह आप क्या कर रहे हैं?

"बेटी अब और कर ही क्या सकता हूँ? ख़ुदा से दुआ माँगता हूँ, कहता हूँ—ऐ दुनिया के मालिक! मेरी मुश्किल आसान कर; यह तख्त, तैमूर के ख़ून का तख्त तो आज गया ही, मेरे बच्चों की जान और आबरू पर रहम बख्श!"

गुलबानू ने कहा—बाबा! दुश्मन क़िले तक पहुँच चुके हैं। आपके लिए सवारी तैयार है, भागिए!

बादशाह ने अन्धे की तरह शाहज़ादी का हाथ पकड़ कर कहा—भागूँ कहाँ ? हाय ! वह घड़ी अब आ ही गई ?

इसके बाद उन्होंने अपनी जड़ाऊ सन्दूकची मँगाई, और परिवार के सब लोगों को बुला कर एक-एक मुट्ठी हीरे सबको देकर कहा—खुदा हाफ़िज़ !

क़िले से निकल कर बादशाह सीधे निज़ामुद्दीन गए। उस वक्त उनके मुख-मण्डल की आभा उतरी हुई थी। कुछ खास-खास ख्वाजासरा, कहार और इने-गिने शुभचिन्तकों के सिवा कोई साथ न था। चिन्ता और भय से वे रह-रह कर काँप रहे थे। उनकी सफ़ेद दाढ़ी धूल से भर रही थी। बादशाह चुपचाप जाकर सीढ़ियों पर बैठ गए।

गुलामहुसैन चिश्ती सुन कर दौड़े आए। बादशाह उन्हें देखते ही खिलखिला कर हँस पड़े। चिश्ती साहब ने पूछा—खैर तो है ?

"खैर ही है, मैंने तुमसे पहले ही कह दिया था कि ये बद-नसीब गदर वाले मनमानी करने वाले हैं। इन पर यक़ीन करना बेवक़ूफ़ी है; ये खुद डूबेंगे और हमें भी डुबावेंगे। वही हुआ, भाग निकले। मुझे तो होनहार दिखाई दे गई थी कि मैं मुग़लों का आखिरी चिराग़ हूँ। मुग़लों के तख्त का आखिरी साँस टूट रहा है, कोई घड़ी-भर का मिहमान है। फिर खून-खराबी क्यों करूँ ? इसीलिए क़िला छोड़ कर चला आया। मुल्क खुदा का है, जिसे चाहे दे, जिसे चाहे ले। सैकड़ों साल तक हमारे नाम का सिक्का चला। अब हवा का रुख कुछ और ही है। वे हुकूमत करेंगे, ताज पहनेंगे। इसमें अफ़सोस क्यों ? हमने भी तो दूसरों को मिटा कर अपना घर बसाया था ! हाँ,

आज तीन दिन से खाना नसीब नहीं हुआ है। कुछ हो तो ले आओ ?"

चिश्ती साहब ने कहा—सिर्फ़ बाजरे की रोटी और सिर्के की चटनी है। हुक्म हो तो हाजिर करूँ।

"वही ले आओ।"

बादशाह ने शान्तिपूर्वक एक रोटी खा और पानी पीकर कहा—बस, अब हुमायूँ के मक़बरे में चला जाऊँगा, वहाँ जो भाग्य में होगा वह होगा।

हुमायूँ के मक़बरे में हडसन और इलाहीबख्श ने आकर बादशाह को गिरफ़्तार करके रंगून भेज दिया।

६

तीन वर्ष व्यतीत हो गए। दिल्ली में अङ्गरेजी अमल जम कर बैठ गया था। लाल क़िले पर यूनियन जैक फहरा रहा था। फाँसियों की विभीषिकाओं ने नगर और ग्राम की जनता के मन में दहल उत्पन्न कर दी थी। दब्बू भेड़ की तरह चुपचाप अङ्गरेजों के विधान को अटल प्रारब्ध की तरह देख और सह रहे थे। इलाहीबख्श के पास बादशाही बख्शीश ही बहुत थी, अब अङ्गरेज़ी जागीरों और मेहरबानियों ने उन्हें आधी दिल्ली का मालिक बना दिया था। सरकारी नीलामों में मुहल्ले के मुहल्ले उन्होंने कौड़ियों में पाए थे। उनकी बड़ी भारी अट्टालिका खड़ी मनुष्य के भाग्य पर हँस रही थी। सन्ध्या का समय था। अपनी हवेली के विशाल प्राङ्गण में तख़्त के ऊपर बढ़िया ईरानी

कालीन पर मसनद के सहारे इलाहीबख्श बैठे अम्बरी तमाखू पी रहे थे. दो-चार मुसाहिब सामने अदब से बैठे जी-हुज़ूरी कर रहे थे। मियाँ जी को मालूम होता है, बचपन के दिन भूल गए थे। वे बहुत बढ़िया अतलस के अँगरखे पर कमख़ाब की नीमास्तीन पहने थे।

धीरे-धीरे अन्धकार के पर्दे को चीरती हुई एक मूर्ति अग्रसर हुई। लोगों ने देखा, एक स्त्री-मूर्ति मैला और फटा हुआ बुर्क़ा पहने आ रही है। लोगों ने रोका, मगर उसने सुना नहीं। वह चुपचाप मियाँ इलाहीबख्श के सन्मुख आ खड़ी हुई।

मियाँ ने पूछा—क्या चाहती हो ?

"पनाह !"

"कौन हो ?"

"आफ़त की मारी !"

"अकेली हो ?"

"बिलकुल अकेली !"

"कुछ काम करना जानती हो ?"

"बावर्ची का काम सीख लिया है !"

"तनख़ाह क्या लोगी ?"

"एक टुकड़ा रोटी !"

बहुत महीन, दर्द-भरी, कम्पित आवाज़ में इन जवाबों को सुन कर मियाँ इलाहीबख्श सोच में पड़ गए। थोड़ी देर बाद उन्होंने नौकर को बुला कर उस स्त्री को भीतर भिजवा दिया। उस दिन उसी को खाना बनाने का हुक्म हुआ।

मियाँ इलाहीबख्श दस्तरख़ान पर बैठे। दोस्त अहबाब का पूरा जमघट था। तब तक दिल्ली में बिजली तारों से

नहीं बाँधी गई थी। सुगन्धित मोमबत्तियाँ शमादानों में जल रही थीं।

खाना खाने से सभी खुश हुए। नई बावर्चिन की तारीफ़ के पुल बाँधने लगे। दोस्तों ने कहा—ज़रा उसे बुलाइए और इनाम दीजिए।

इलाहीबख्श ने बावर्चिन को बुला भेजा। उसने कहा—आक़ा से दस्त-बस्ता अर्ज़ है कि मैं ग़ैर-मर्दों के सामने बेपर्दा नहीं हो सकती। हाँ, आक़ा से पर्दा फ़िजूल है। दोस्त लोग मन मार कर रह गए। मगर इलाहीबख्श के मन में प्रति क्षण बावर्चिन को देखने की बेचैनी बढ़ चली। एकान्त होने पर उन्होंने उसे बुला भेजा। बावर्चिन ने जवाब दिया—मेरे मिहरबान मालिक! सफ़र, मिहनत और भूख से बेदम तथा कपड़ों से मलाज हूँ—ख़िदमत में हाज़िर होने के क़ाबिल नहीं।

इलाहीबख्श स्वयं भीतर गए और बावर्चिन के सामने जा खड़े हुए। बोले—क्या मैं तुम्हारी मुसीबत की दास्तान सुन सकता हूँ? यह तो मैं समझ गया कि तुम शरीफ़ ख़ानदान की दुखियारी हो।

बावर्चिन ने अच्छी तरह अपना बुर्क़ा ओढ़ कर कहा—मालिक! मेरी कोई दास्तान ही नहीं!

"क्या मुझसे पर्दा रक्खोगी?"

"यह मुमकिन नहीं है!"

"तब?"

"क्या आप मुझे देखना चाहते हैं?"

"ज़रूर, ज़रूर!"

वह मैला और फटा बुर्क़ा चम्पे की समान उँगलियों ने

हटा कर नीचे गिरा दिया। एक पीली किन्तु अभूतपूर्व मूर्ति, जिसके नेत्रों में पानी और होठों में रस था, सामने दीख पड़ी।

इलाहीबख्श ने आँखों की धुन्ध आँखों से पोंछ कर जरा आगे बढ़ कर कहा—तुम्हें, आपको मैंने कहीं देखा है ?

"जी हाँ, मेरे आक़ा ! मेरे दादाजान की मिहरबानी से, लाल क़िले के भीतर, जब आप मेरी डोली में लगाए जाने के लिए चाबुकों से लहू-लुहान किए गए थे, तब यह बदनसीब गुलबानू आपको तसल्ली देने तथा और भी कुछ देने आपकी खिदमत में आई थी। उम्मीद थी, मर्द औरत की अमानत—खासकर वह अमानत, जो दुनिया की चीज़ नहीं, जिसके दाम जान और क़ुर्बानी हैं, सँभालकर रक्खेंगे। पर पीछे यह जानने का कोई जरिया ही न रहा कि हुजूर ने वह अमानत किस हिफ़ाज़त से कहाँ छिपा कर रक्खी ? ग़दर में वह रही या मेरे बाबाजान के तख्त के साथ वह भी गई ?

इलाहीबख्श का मुँह काला पड़ गया। बदहवासी की हालत में उनके मुँह से निकल पड़ा—आप शाहजादी गुलबानू××× ?

गुलबानू ने शान्त स्वर में कहा—वही हूँ जनाब ! मगर डरिएगा नहीं ! अगर ग़दर में मेरी अमानत लुट भी गई होगी, तो वह माँगने जनाब की खिदमत में नहीं आई हूँ। अब गुलबानू शाहजादी नहीं, हुजूर की कनीज़ है—महज़ बावर्चिन है ! मेरे आक़ा, क्या बाँदी के हाथ का खाना पसन्द आया ? क्या बदनसीब गुलबानू की नौकरी बहाल रह सकेगी ?

इलाहीबख्श बेहोश होने लगे। वे सिर पकड़कर वहीं बैठ गए। गुलबानू ने पङ्खा लेकर झलते हुए कहा—जनाब के दुश्मनों की तबीयत नासाज़ तो नहीं, क्या किसी को बुलाऊँ ?

इलाहीबख़्श ज़मीन पर गिर कर शाहज़ादी का पल्ला चूम कर बोले—शाहज़ादी, माफ़ करना ! मैं नमकहराम हूँ।

'मैं जानती हूँ। मगर हुज़ूर, यह तो बहुत छोटा क़सूर है। क्या हुज़ूर यह नहीं जानते कि औरतें दिल और मुहब्बत को सलानत से बहुत बड़ी चीज़ें समझती हैं ? क्या आप यक़ीन करेंगे कि १२ साल तक मैं आपकी उस ज़मीन में घायल तड़पती, सूरत को आँखों में बसा कर जीती रही। जो कुछ बन सका, बाबाजान से कह कर किया। मैं जानती थी कि मिल न सकूँगी, मगर आपको दुनिया में एक रुतबा देने की हरस थी—वह पूरी हुई।

इलाहीबख़्श पागल की तरह मुँह फाड़ कर सुन रहे थे।

शाहज़ादी ने कहा—जब बाबाजान ने आपकी दग़ा और अङ्गरेज़ों से आपके मिल जाने का हाल कहा, तो दिल टूट गया। मगर उस दिन से अब काम ही क्या ? वह टूटे या साबूत रहे, आख़िर अनहोनी तो हो गई—एक बार फिर मुलाक़ात हो गई। जड़े क़िस्मत !

इलाहीबख़्श भागे। वे चुपचाप घर से निकले। नौकर-चाकर देख रहे थे। उसके बाद किसी ने फिर उन्हें नहीं देखा !



सोया हुआ शहर

[इस कहानी में फतेहपुर सीकरी के खण्डहरों में बिखरी हुई दुर्दान्त वासना की एक असाधारण प्रेम कहानी है। कहानी पढ़ने के समय पाठक विवश उसी युग में पहुँच जाते हैं। अपने समय के संसार भर के सबसे बड़े बादशाह यथार्थ नामा—शाहजहाँ और उनकी प्यारी बेगम मुमताज महल—जिनकी स्मृति में आगरे का ताजमहल चन्द्रमा की स्निग्ध ज्योत्स्ना में शताब्दियों से अपनी सुषमा बखेर रहा है—का नव विकसित यौवनकाल अमल धवल ओस की उज्ज्वल बिन्दु के समान कोमल प्रेम वर्णित है]

१

आगरे के विश्व विख्यात ताज को देखने के बाद, जो लोग भाग्यहीन शाहजहाँ के अन्तिम बेबसी के दिनों पर करुणा का भाव भर कर घर लौटते हैं, उनकी आगरा यात्रा अधूरी ही रहती है। दूर और निकट के यात्रियों का प्रायः यही रंग ढंग देखने में आया है कि ताज देखा, सिकन्दरे का चक्कर लगाया और आगरे की प्रसिद्ध दाल-मोठ और पेठे की छोटी सी पोटली पल्ले बाँधी और समझ लिया कि आगरे की तफरीह पूरी हो गई।

उनमें से बहुत से यात्रियों को यह नहीं मालूम है कि आगरे के पार्श्व में एक सोया हुआ शहर भी है, जिसका प्रत्येक निवासी सो रहा है—प्रत्येक भवन, प्रत्येक महल, प्रत्येक पत्थर सो रहा है। अनन्त अटूट नींद में, ऐश्वर्य और विलास से थक

कर, या ऊब कर—जहाँ जाग्रत पीर शेख सलीम की उज्ज्वल समाधि है और बादशाह अकबर की भाँति जिस समाधि पर आज भी सहस्रों नर नारी पुत्र की भीख माँगने जाते हैं। जहाँ जीती जागती सुन्दरियों को गोट बनाकर शतरंज खेली जाती थी। जहाँ एक खम्भे के आधार पर टिके हुए भवन में बैठ कर सम्राट अकबर तत्कालीन विद्वानों के साथ मनुष्यों के धर्म भाव की एकता पर गम्भीर विचार किया करता था। जहाँ जोधाबाई ने मुगल हरम में राधामाधव की मूर्ति स्थापित की थी, जहाँ विश्व विख्यात बीरबल, खानखाना रहीम, विद्वान फैजी बन्धु और कट्टर मुल्ला अब्दुल क़ादिर उस बड़े मुग़ल के चरणों में बैठ कर भारत के साम्राज्य की व्यवस्था करते थे; तलवार और कलम से और जहाँ तानसेन और बैजू बावरे ने अपनी तान से वायु मण्डल को पुलकित किया था।

इस समय हम उसी महानगरी की चर्चा करते हैं। उसका नाम फतहपुर सीकरी है। आगरा तब एक छोटा सा गाँव जमुना तट पर था। वहाँ न ताज था न सिकन्दरा, न किनारी बाजार था, न भव्य किला। जब दोपहर की तेज धूप में तपी लुएँ धूल के बवंडर को लेकर साँयसाँय आवाज़ करती उठती थीं, तब आगरे की फूँस की झोपड़ियाँ हिल उठती थीं! उस समय फतहपुर सीकरी में एक से एक बढ़ कर प्रसाद निर्माण हो रहे थे और बड़ी-बड़ी विभूतियाँ वहाँ एकत्रित हो रही थीं। वहाँ प्रबल प्रतापी मुगल साम्राज्य का निर्माण हो रहा था!

परन्तु हमारा वर्णन तो और आगे चलता है। सम्राट अकबर ही ने अपनी उस राजधानी को अधूरी छोड़ कर आगरे को राजधानी बना लिया था। और जब सम्राट् अकबर अपने

राज्य का विस्तार कर स्वर्गस्थ हुए तथा उनके पुत्र जहाँगीर ने मुगल तख्त को सुशोभित किया, तब यह बेचारा भाग्यहीन शहर एक दलित मलिन विधवा की भाँति अपनी सम्पूर्ण श्री खो चुका था और इतनी ही देर में वे महल और प्रासाद खण्डहर और सूने हो चले थे।

बादशाह जहाँगीर अपनी आयु के पचास साल व्यतीत कर चुके थे। मुगल साम्राज्य का संगठन पूरा हो चुका था। काबुल, कन्धार, ईरान, तूरान, हब्श और कुस्तुन्तुनिया तक उसकी धाक जम गई थी। इंगलैंड और यूरोप के अन्य देशों के राजदूत भाँति भाँति के नजराने लेकर जहाँगीर के दरबार में चौखट चूमते थे।

बादशाह बहुधा लाहौर के दौलतखाने में रहते थे। आगरा भी उनका प्रिय निवास था। वास्तव में आगरा मुगल साम्राज्य की राजधानी थी। राजधानी जहाँ विविध आश्चर्य और राजनैतिक घटनाओं का केन्द्र थी, वहाँ वह अनेक षड्यन्त्रों का घर भी थी। बहुत सी खून खराबियाँ, बहुत सी अनीति मूलक कार्यवाहियाँ वहाँ आये दिन होती रहती थीं।

जहाँगीर एक नर्म दिल प्रेमी और लापरवाह बादशाह थे। अफीम और शराब दोनों का सेवन करते थे। उनका मिजाज प्रेमीजनों की भाँति कुछ सनकी था। असल बात तो यह थी कि वे नाम के बादशाह थे। असल बादशाह तो नूरजहाँ मलिका थी, जिसने अपने रूप, यौवन, चतुराई, खुशमिजाजी और बुद्धि वैभव से बादशाह और बादशाह के साम्राज्य पर भी अपना अधिकार कर रखा था।

मुगल साम्राज्य का कोई दरबारी अमीर नूरजहाँ की कृपा

दृष्टि पाए बिना सल्तनत में अपनी प्रतिष्ठा क़ायम नहीं रख सकता था। बादशाह के पुत्र भी इसका अपवाद न थे। इस कारण मुगल राजधानी षड्यन्त्रों का एक गर्मागर्म केन्द्र बन गई थी। ये षड्यन्त्र बादशाह के भी विरुद्ध होते थे और बेगम नूरजहाँ के भी विरुद्ध।

अफवाह गर्म थी कि फतहपुर सीकरी इन षड्यन्त्रकारियों का एक जबरदस्त अड्डा बना हुआ है। उस अड्डे को भंग करके साम्राज्य में अमन और व्यवस्था कायम करने के लिए बादशाह ने अपने अनेक कर्मचारियों को भेजा परन्तु उन्हें कुछ भी सफलता नहीं मिली।

आगरे में इस बात का बड़ा आतंक फैला हुआ था कि आए दिन एक न एक राज कर्मचारी किसी असाधारण गुप्त रीति से पकड़ कर ग़ायब कर दिया जाता है और कुछ दिन बाद उसकी लाश आगरे की शहर पनाह के फाटक पर मिलती है, और एक इश्तहार में उसके जुर्म लिख कर टांग दिये जाते हैं।

यह भी बड़े जोरों से अफवाह थी कि ऐसी आज्ञाएँ फतेहपुर सीकरी से एक जबरदस्त गुप्त संगठन से प्रचारित होती हैं। और वह संगठन जिसे प्राणदण्ड देता है उसकी रक्षा न बेगम नूरजहाँ कर सकती है और न सम्राट् जहाँगीर। इस आतंक का अन्त करने स्वयं बादशाह लाहौर के दौलतखाने से आगरे तशरीफ लाए थे। और अपने प्रमुख दरबारियों और राज कर्मचारियों की असफलता से खीझकर इस बार उन्होंने खुद शाहजादा खुर्रम को एक अच्छी सेना देकर फतहपुर सीकरी भेजा था।

२

"तो जानेमन, अब तुम यहीं आगए ? अब कहीं जाओगे तो नहीं ?"

"नहीं दिलवर, कभी नहीं, अब हम चाहे जब मिल सकेंगे।"

"चाहे जब कैसे प्यारे ! अब्बा मुझे घर से बाहर आने देंगे तब तो ?"

"अब्बा क्या तुम्हें रोकते हैं ताज ?"

"तुम नहीं जानते, कल वह शैतान खुर्रम यहाँ फौज लेकर आया है। बादशाह ने आगरे से उसे भेजा है, अब्बा की निगरानी करने को।"

"तो आने दो उस शैतान को, प्यारी ! वह हमारा क्या बिगाड़ लेगा ।"

"क्यों नहीं, क्या तुमने नहीं सुना—उसकी नजर बहुत खराब है ?"

"सच ! तुमसे किसने कहा ?"

"कहता कौन, क्या मैं नहीं जानती कि ये आगरे के जर्क-बर्क शाहजादे कैसे पाजी होते हैं।"

"तो क्या हर्ज है। नजर बैठ जाय शाहजादे की। हिन्दुस्तान की मालिका बनोगी, इस गरीब की जोरू बन कर क्या मिलेगा ?"

"तुम तो मिलोगे, जो तमाम जहान की मिल्कियत से ज्यादा हो।"

"मगर कहाँ मकई की मोटी रोटियाँ, टूटी खाट, पुराना छप्पर और कहाँ रंगमहल, हीरा, मोती, नाच, रंग।"

"ओह यूसुफ़, तुम बड़ा जुल्म करते हो। मैं खुशी से वह रोटियाँ खाऊँगी और पका-पका कर तुम्हें खिलाऊँगी। मैं उसकी आदी हूँ। तुम औरत का दिल नहीं जानते, इसी से हीरा, मोती का लालच दिखाते हो।"

"तो इसमें आँखें क्यों भर लाईं, प्यारी ताज, मैं तो हँसी कर रहा था।"

"तुम्हारी हँसी में मेरी जान जायगी।"

"नहीं नहीं जानेमन, ऐसा न कहो।"

"तो कहो तुम अब्बा से अब कब मिलोगे?"

"बहुत जल्द। अँधेरा हो गया। चलो मैं पहुँचा आऊँ।"

"पर कोई देख लेगा?"

"देखने वाले की आँखें फूट जायँ।"

दोनों खिलखिला कर हँस पड़े। युवती अठारह साल की एक बाला थी। उसका हीरे के समान उज्वल शरीर साधारण वस्त्रों में ढक रहा था और युवक एक देहाती जमींदार सा मा'लूम पड़ता था। दोनों ने प्यार की नज़रों से एक दूसरे को देखा। युवक धीरे-धीरे बस्ती की ओर चला, उसके साथ-साथ अपने सौरभ और चपल गति से आनन्द बखेरती हुई युवती भी चली। राह बाट में अँधेरा छा रहा था।

३

अँधेरे के सन्नाटे में कुछ आदमी सतर्कता से बातचीत कर रहे थे। उनमें एक भद्र पुरुष था जिसकी लम्बी सफेद डाढ़ी

और गहरी काली आँखों से बुद्धिमता तथा गम्भीरता टपक रही थी। दूसरा व्यक्ति शाहज़ादा खुर्रम था, जिसकी आयु कोई सत्ताइस वर्ष की थी। दो आदमी हिन्दू राजपूत मालूम होते थे।

बूढ़े ने कहा—"तो शाहज़ादा, यह तो अच्छा हुआ। आप ही को आपकी निगरानी पर जहाँपनाह ने तैनात किया है।"

"पर जहाँपनाह को यह मुतलक़ मालूम नहीं है कि मैं ही सब फ़साद की जड़ हूँ।"

"खैर तो अब इस फ़साद की जड़ को उखाड़ फेंकने में देर न होनी चाहिए शाहज़ादा," एक राजपूत ने कहा।

"तो आप चाहते क्या हैं, राजा साहेब?"

"मैं कहना चाहता हूँ कि मुग़ल सल्तनत पर एक ऐसी औरत हुकूमत कर रही है, जिसकी न हम इज्ज़त करते हैं और न जिसे ऐसा करने का कोई-हक़ है। वह अपनी झोंक में आकर मुग़ल तख्त के साथ खेल कर रही है। शाहज़ादा, यह तख्त आपका है, इसे आप न बचाएँगे तो आप इस पर बैठ नहीं सकेंगे।"

"मगर मैं क्या कर सकता हूँ?"

"इस औरत को क़ैद कीजिए और बादशाह को तख्त से उतार दीजिए। और आप शहनशाह हिन्द होकर रियासत की बागडोर हाथ में लीजिए। हम सब आपके साथ हैं।"

"लेकिन यह क्या आसान है?"

"क्यों नहीं, आपने ही तो कहा—अगले जुमे को बादशाह खुद यहाँ आरहे हैं।"

"तब?"

"उसी दिन बादशाह और बेगम दोनों को गिरफ्तार कर लिया जाय और सल्तनत को अपने ताबे कर लिया जाय।"

"बूढ़े ने कहा, "हज़रत शाहज़ादा, याद रखिए कि जलालुद्दीन अकबर का तख्त मुग़लों का है, ईरान की एक अनजान औरत का नहीं!"

"और मुग़लों के खून में हमारा राजपूती खून मिल चुका है, शाहज़ादा इसलिए उनके लिए हम अपना खून बहा सकते हैं। मगर एक मनमानी औरत के लिए नहीं। यह मेरी राय नहीं, जोधपुर, जयपुर, उदयपुर, बूँदी, सभी के राजपूत सरदारों की राय है।"

"तो आप सब लोगों की यही राय है?"

"हम बचन देते हैं।"

"तो दोस्तो, मुझे मुँजूर है। मैं आपसे बाहर नहीं, आज भी मगर मैं चाहता हूँ कि कोई भारी क़दम उठाने से पेश्तर एक मौक़ा दिया जाय। इस वक्त बादशाह को सिर्फ़ ख़बरदार कर दिया जाय। फिर लड़ना ही है तो खुलकर लड़ा जायगा।"

सबने कहा, "खैर, यही सही," और सभा बर्खास्त हुई।

   

बादशाह जहाँगीर और नूरजहाँ की शाही सवारी फ़तहपुर सीकरी आई हुई है, इससे इस सोए हुये शहर में जागने के चिन्ह देख पड़ते हैं। सूनी और जनहीन गलियों में सिपाही घोड़े, हाथी, प्यादे और खोजे गुलाम अपनी अपनी धुन में इधर से उधर आ जा रहे हैं। राजप्रासाद के बाहरी विशाल आँगन में उर्दू हैं। वहाँ बहुत से डेरे, तम्बू, दूकानें हैं। मोची,

तमोली, क़साई, घसियारे, धोबी, हम्मामी, नानबाई अपने अपने काम में लगे हैं। सौदे सुलफ़ का बाजार गर्म है।

हज़रत बादशाह सलामत का डेरा मरियम के महल में पड़ा है। लोगों का कहना था कि यही महल बड़े बड़े रहस्यों और आश्चर्यों का खजाना है। यहाँ मृत बादशाह अकबर और उनकी प्यारी बेगम मरियम की आत्मा रात को विचरण करती है।

लोगों ने इस महल से रात के समय अनेकों प्रकार की आवाजें आती सुनी हैं, और भांति भांति के शब्द सुने हैं। बहुत लोग इसे भूतों का अड्डा समझते हैं। बहुत इसे विद्रोही षड्यन्त्रकारियों का अड्डा कहते हैं। बादशाह जहाँगीर ने बेगम नूरजहाँ की सलाह से इसी में अपना डेरा जमाया है।

जल्दी में जितना साफ़ हो सकता था इसे साफ़ करके आरास्ता किया गया है। नीचे बादशाह का डेरा है, ऊपर की मंजिल में बेगम का। महल के भीतर तातारी बाँदियों और खानज़ादों का कड़ा पहरा है। और बाहर अहदियों का जिनकी सरदारी बादशाह के लायक साले और नूरजहाँ के भाई आसफ़ जाह स्वयं बड़ी तत्परता से कर रहे हैं।

बादशाह बहुत मौज में हैं। महल के प्रांगण में जो फव्वारा चल रहा है उसके पास वाली संगमरमर की चौकी मसनद पर लगी है जहाँ उनकी प्यालों की मजलिस जुड़ी है। इस मजलिस में जिन्हें आने का अधिकार है वे जमे बैठे हैं। बादशाह अपने हाथ से उन्हें प्याले देते जा रहे हैं, और वे लोग बार बार कोर्निस करके अदब से ले लेकर पीते जा रहे हैं। धीरे धीरे सब की आँखों में सरूर की लाली छा गई, ज़बानें बहक गईं

और अदब गायब हो गया। बादशाह वहीं मसनद के सहारे ढुलक कर सो गये और दरबारी लोग चुपचाप उठकर अपने अपने डेरों पर चले गये। गुलाम बादशाह को ख्वाबगाह में ले गये।

❀ ❀ ❀

अकस्मात बादशाह किसी अज्ञात् वेदना से चीख उठे। आँख खोलकर देखा, पहिले तो कुछ समझ न पड़ा। वे बारंबार आँखें बन्द करने और खोलने लगे। वे स्वप्न देख रहे हैं या जाग रहे हैं, यह उन्हें समझ न पड़ा।

उन्होंने देखा एक अपरिचित छोटे से किन्तु सुसज्जित कक्ष में वे बन्दी के तौर पर बैठे हैं। उनके पीछे दो क़द्दावर गुलाम नंगी तलवार लिए खड़े हैं। सामने एक रत्न जटित सिंहासन है, उस पर एक षोडशी बाला रत्न जटित पोशाक पहिने रुआब से बैठी है। वह घूर-घूर कर तेज आँखों से बादशाह की ओर देख रही है। उसके तेज से दैदीप्यमान चेहरे की तरफ़ आँखें नहीं ठहरतीं हैं। एक पास खड़े गुलाम की ओर देख कर, बादशाह की ओर उँगली उठा कर रमणी ने कहा, 'यह तुम किसे ले आये हो, इब्राहीम ?'

"सरकार, यह हिन्दुस्तान का वही शराबी और ऐयाश बादशाह है।"

"इसका क्या क़सूर है, जो हमारे हुजूर में इसे हाज़िर किया गया है ?"

"पहिली बात तो यह कि यह शराबी और ऐयाश है।"

"और ?"

"और इसने एक परदेसी औरत के ऊपर तख्तो ताज का

सारा बोझ डाल दिया है जो सल्तनत में मनमानी धाँधली करती है।"

"वह औरत कौन है ?"

"उस औरत का नाम नूरजहाँ है, वह बादशाह की चहेती मलिका है। उसने अपने हजारों जासूसों का जाल बिछा रखा है। उनके जरिये से वह अपनी तमाम इच्छायें पूर करती है। उसकी ताक़त का हद नहीं, वह जो चाहती है वह करके ही छोड़ती है, चाहे वह अच्छा काम हो चाहे बुरा।"

"उसे हमारे हुजूर में हाजिर करो," मलिका ने हुक्म दिया और दो ख्वोजों के पहरे में नूरजहाँ हाजिर हुई।

मलिका ने उसकी ओर उँगली उठाकर कहा, "इसने क्या किया है ?"

"यह अपने दामाद शहरयार को बादशाह बनाना चाहती है। इसके लिये इसने तख्त के हक़दार शाहजादा खुर्रम को मार डालने की पूरी तैयारियाँ कर ली हैं। इसने राज्य के बड़े २ कई अमीरों और मसनबदारों को मार डाला है। इसी के हुक्म से विद्वान और वृद्ध खानखाना अब्दुररहीम दरबार में बेइज्जत हुआ है। इसी ने बहादुर सेनापति महाबद खाँ को सल्तनत का दुश्मन बनाया है। स्वर्गवासी सम्राट अकबर ने जो हिन्दू-मुसलमानों के प्रेम की बेल बोई थी इसने उसे उजाड़ दिया है। और यह विदेशी ईरानियों को शाही दरबार में भर रही है। इसी का भाई आसफखाँ वजीर बनकर मुग़ल सल्तनत में स्याह-सफेद जो चाहता है करता है।"

"शाहजादा खुर्रम को हाजिर किया जाय।"

दो खोजे शाहज़ादा को भी ले आये।

मलिका ने कहा, "क्या तुम कह सकते हो कि दिल्ली के तख्त पर किसकी हुकूमत है?"

"जी हाँ कह सकता हूँ, बेग़म नूरजहां की।"

"बादशाह जहाँगीर की क्यों नहीं?"

"वे मलिका के हुक्मी बन्दे हैं।"

"क्या यह सच है कि बेग़म की कार्रवाइयों से राजपूतों के दिल सल्तनत और बादशाह से फिर रहे हैं?"

"जी हाँ, कितने ही राजपूत राजा जो पहिले तख्त के फ़र्माबर्दार थे अब बाग़ी हो रहे हैं। कुछ जाहिरा, कुछ छुपे छुपे, और यही रँग ढँग रहा तो एक दिन वे खुल खेलेंगे।"

"क्या जहांपनाह अपनी सफाई पेश करेंगे?"

बादशाह जो अब तक भी पूरे होशोहवास में न था, धीरे से बोला, "नहीं।"

"और हजरत मलिका?"

"नहीं," गुस्से से होठ चबा कर मलिका नूरजहां ने कहा।

"और शाहजादा खुर्रम?"

"जब जहांपनाह ने और मलिका ने अपने को आपके रहम पर छोड़ दिया है तो मैं भी कुछ कहना मुनासिब नहीं समझता।"

"क्या यह मुनासिब न होगा कि इन दोनों को क़त्ल करके हस्ब मामूल अदालत आगरे की शहरपनाह के फाटक पर इनकी लाशों को डाल दिया जाय?"

इसके जवाब में कुछ देर इस अद्भुत अदालत में सन्नाटा रहा, फिर कुछ अंधेरा हो गया और बादशाह और बेग़म दोनों

ने अनुभव किया कि एक प्रकार की बेहोशी उन पर छा रही है। थोड़ी देर में दोनों बेहोश हो गये।

❋ ❋ ❋

सुबह उठ कर बादशाह ने अपने को अपने पलंग पर सोते पाया। वे आंखें फाड़ फाड़ कर चारों ओर देखने लगे। रात की एक एक बात उन्हें याद थी। उन्होंने अपने ख्वाजा सरा से पूछा, "रुस्तम, हम कहाँ हैं ?"

"हुजूर जहाँपनाह, फ़तहपुर सीकरी के मुक़ाम पर अपनी ख्वाबगाह में तशरीफ़ रखते हैं।"

"और रात भर हम कहाँ थे ?"

"जहाँपनाह आराम से यहीं सोते हैं।"

"यह बात तुम इतमीनान से कह रहे हो ?"

"जी हाँ हुजूर, ग़ुलाम खुद तमाम रात खिदमत में हाजिर रहा है।"

"और तुम कहते हो, हम यहाँ से कहीं गये नहीं ?"

"जी हुजूर।"

"कोई बाहरी आदमी भी यहाँ नहीं आया ?"

"जी नहीं।"

"मलिका क्या जाग रही हैं ?"

"जी हाँ, जहाँपनाह।"

"हम अभी उन्हें देखा चाहते हैं ?"

ग़ुलाम ने क्षण भर में उन्हें ला हाजिर किया। बेग़म के चेहरे पर हवाइयाँ उड़ रही थीं। उन्होंने कहा, "खुदा का शुक्र है, जहाँपनाह बखैरियत हैं।"

"मगर तुम परेशान क्यों हो, मलिका ?"

"मेरे होश हवास ठिकाने नहीं हैं मालूम होता है मैंने एक बहुत खराब ख्वाब देखा है।"

"ख्वाब ?"

"ख्वाब ही उसे कह सकते हैं जहाँपनाह, जब कि मेरी सारी लौंडियाँ कहती हैं कि मैं तमाम रात अपनी ख्वाबगाह में माठी नींद लेती रही हूँ, तो और क्या हो सकता है ?"

"मगर वह ख्वाब कैसा था ?"

"ओफ़ ! जहाँपनाह, एक औरत के दरबार में हम और आप दोनों मुजरिम बन कर गये थे और शायद वहाँ से हमें क़त्ल का हुक्म हुआ है।"

"खुदा की मार, बेगम, मैंने भी ठीक ऐसा ही ख्वाब देखा है।"

"तो वह ख्वाब ही था, जहाँपनाह ?"

"जब रुस्तम कहता है कि मैं तमाम रात अपने पलंग पर सोता रहा हूँ, तो और क्या हो सकता है ?"

"शैतान या जिनों की भी तो करामात हो सकती है।"

"मैं उसका क़ायल नहीं हूँ। खुर्रम को हाजिर करो।"

एक खोजा दौड़कर बाहर गया, थोड़ी देर में खुर्रम ने आकर आदाब बजाया।

"खुर्रम रात तुम कहाँ थे ?"

"अपनी ख्वाबगाह में, हुजूर।"

"मगर-मगर तुमने कोई ख्वाब देखा था ?"

"याद तो नहीं पड़ता।"

"और तमाम रात तुम अपनी ख्वाबगाह से बाहर नहीं निकले ?"

"जी नहीं।"

"खैर तो आसफ कहाँ है ?"

"हुजूर ड्योढ़ियों पर हाजिर है।"

"बुलाओ उन्हें।" शाहजादा के इशारे पर एक खोजा उन्हें बुला लाया।

बादशाह बोले "आसफ, इस मकान पर पहरा किसका था ?"

"मैं खुद रात भर जाग कर पहरा देता रहा हूँ और ५०० सिपाही महल की निगरानी पर तैनात हैं।"

"तुम कह सकते हो कोई बाहरी आदमी भीतर नहीं आया ?"

"जी नहीं।"

"तुमने भीतर कोई चहलपहल भी नहीं देखी ?"

"जहाँपनाह के सो जाने के बाद नहीं।"

"तुम कह सकते हो मैं तमाम रात सोता रहा ?"

"जी हाँ हुजूर मैं कई बार देख गया हूँ।"

"और बेगम भी ?"

"जहाँ तक मेरा ख्याल है जहाँपनाह बेगम अपने ख्वाबगाह में सोती रही हैं।

बादशाह और बेगम ने एक दूसरे की ओर देखा और बादशाह सोच में पड़ गये।

❀ ❀ ❀ ❀

"खूब किया ताज, तुम तो मलिका के रूप में जच गईं।

और सवाल भी किस शान से किये।"

"और तुमने भी खूब शाहजादा खुर्रम का स्वाँग भरा, युसुफ आह, उन कपड़ों में तुम जँचते थे, मजा आ गया।"

"और तुम, प्यारी ताज, वाह, क्या शान थी।"
"मगर यह तो कहो, यह नाटक किस लिये खेला गया?"
"दिल्लगी थी। इसके भीतर कुछ राज की बातें हैं।"
"अब्बा को पता लगेगा तो, क्या कहेंगे?"
"पर पता कैसे लगेगा, उनसे कहेगा कौन?"
"खैर, तो क्या सचमुच वही दोनों बादशाह और बेगम जहाँ थे?"
"और नहीं तो क्या।"
"जो उन्हें हमारी इस बेअदबी का पता लग जाये तो?"
"पर पता कैसे लगे?"
"यह नाटक खेला क्यों गया?"
"सिर्फ बादशाह को होशियार करने के लिये।"
"इससे क्या होगा?"
"बादशाह ने यह तो देख लिया कि ऐसी भी एक ताक़त है उससे भी जवाब तलब कर सकती है। अब अगर बादशाह .ड़े तो शाहजादा खुर्रम बग़ावत करेंगे!"
"क्या वे बहुत खूबसूरत हैं?"
"देखोगी तो रीझ जाओगी।"
"हटो मैं तुम से नहीं बोलती।"
"अच्छा कहो शाहज़ादे को देखना चाहती हो?"
"चाहती तो हूँ, देखूँ तो शैतान कैसा होता है?"
"देखकर रीझोगी तो नहीं?"
"फिर वही बात।"
"अच्छा उस बात को जाने दो, पर अगर वह शैतान ही पर रीझ जाय और तुमसे शादी करने की दर्ख्वास्त करे?"

"वह क्यों ऐसा करने लगा ?"

"तुम्हें देख कर भला कौन अपने मन को बस में रख सकता है।"

"बड़े खराब हो तुम।"

"तो कहो अगर शाहजादा ऐसा करे तो ?"

"तो मैं साफ़ इन्कार कर दूँगी।"

"खैर यह भी मान लिया जाय, मगर तुम्हारे अब्बा अगर मंजूर कर लें ?"

"वे क्यों मंजूर करेंगे ?

"क्यों, कौन बाप है जो अपनी बेटी को हिन्दुस्तान की मलिका बनाना न चाहेगा।"

"तो मैं जहर खालूँगी।"

"देखा जायेगा। अब एक खुशखबरी सुनो।"

"जल्द कहो।"

"आज शाहजादा तुम्हारे अब्बा से मिलने आयेगा।"

"सच ?"

"सच।"

"किस लिये ?"

"तुमसे शादी की दरख्वास्त करने।"

ताज का मुह सूख गया, वह रोने लगी। युवक ने प्यार से कहा, "रोती क्यों हो ताज, यह तो खुशखबरी है।"

"पर प्यारे यूसुफ़, मैं तुम्हें प्यार करती हूँ। तुम क्यों नहीं अब्बा से कहते। कहे देती हूँ, शाहजादे ने ऐसा किया तो मैं जान देदूँगी।"

युवक बड़ी देर तक प्रेम की दृष्टि से युवती को देखता रहा फिर उसने कहा, "जानेमन, दिल छोटा न करो, मैं भी कोशिश करूँगा। मगर यह नहीं कह सकता कि तुम यूसुफ की गरीब बीबी बनोगी या हिन्दुस्तान की मलिका। चलो घर चलें, धूप हो गई है।"

दोनों चुपचाप लौटे।

मुमताज़ ने घर आकर देखा, उसके बूढ़े अब्बा जल्दी जल्दी घर की सफाई करा रहे हैं। नौकर, चाकर, लौंडी, सभी इस काम में जुटे हैं।

उन्होंने पुत्री को देखकर कहा, "बेटी, इतनी देर से कहाँ गई थी? जल्दी से नहा कर कपड़े बदल लो, शाहज़ादा खुर्रम तशरीफ़ ला रहे हैं।"

ताज को काठ मार गया। वह बाप से कुछ न कह चुपचाप घर में चली गई।

शाहज़ादा ने दलबल सहित प्रवेश किया। वृद्ध ने उसे आदरपूर्वक मसनद पर बैठाया। फिर कोरनिश कर हँसकर कहा:—

"तो बादशाह सलामत आगरे वापस चले गए?"

"जी हाँ, उन्होंने और मलिका ने भी रात को कोई बहुत खराब ख्वाब देखा था उसी से जहाँपनाह के दुश्मनों की तबियत खराब हो गई, ताहम् उन्हें जल्द चला जाना पड़ा।" शाहज़ादा ने मुस्करा कर कहा।

बूढ़ा खिलखिला कर हँस दिया। उसने कहा, "बहुत मुस-

किन है कि इस खराब ख्वाब का बादशाह सलामत पर कोई अच्छा असर पड़े।"

"उम्मीद तो नहीं है—मगर—"

"तो फिर हज़रत हमारी तमाम तैयारियाँ मुकम्मिल हैं। ख्वाजासरा मौत्तरिम ख़ाँ, ख़लील बेग, .ज़ुलकद्‌र, फ़िदाई ख़ाँ, मीर तुग़लक हमारे साथ हैं। ख़ानख़ाना और उसके बेटे दक्खिन से हमारी मदद को आ रहे हैं।"

"तब देर करना फ़िज़ूल है। अब्दुल अज़ीज़ को पैग़ाम लेकर बादशाह सलामत के पास भेज दिया जाय और अपने तमाम उज्‌रत अर्ज़ी में लिख दिये जाँय।"

"बेहतर, मैं आज ही उसे रवाना कर दूँगा, हाँ शाही हरावल का सरदार अब्दुल्लाह भी हमसे मिला हुआ है। वह शाही लश्कर का कच्चा चिट्ठा हमें भेज रहा है, और बदले में झूठे सच्चे क़िस्से गढ़कर बादशाह को सुना देता है। बादशाह उस पर यक़ीन कर लेते हैं।"

"पर मेरा मुद्दा तो सिर्फ़ यही है कि बेग़म का असर सल्तनत पर न रहे। मैं हज़रत सलामत खिलाफ़ आवाज़ उठाना नहीं चाहता।"

"हम लोग भी यही चाहते हैं, हज़रत शहज़ादा।"

"तो फिर जैसा ठीक समझिये कीजिये। हाँ, ताजमहल कहाँ है? अगर इजाज़त हो तो मैं उसे यह तोहफ़ा नज़र किया चाहता हूँ। मैं ताज को प्यार करता हूँ और चाहता हूँ, वह आपकी कोशिशों से हिन्दुस्तान की मलिका बने।" उसने क़ीमती मोतियों का हार वृद्ध के हाथों पर रख दिया।

"शाहज़ादा, इससे ज्यादा खुशक़िस्मती और क्या हो सकती

है।" उसने ताज को आवाज़ दी, और वह नीची गर्दन किये आ खड़ी हुई।

वृद्ध ने कहा, "बेटी, ये हज़रत शाहज़ादा ख़ुर्रम हैं, इन्हें कोरनिश करो, ये तुम्हें यह तोहफ़ा दे रहे हैं।"

ताज ने दबी नज़र से देखा तो उसकी आँखें आश्चर्य से फैल गईं। उसका दिल बांसों उछलने लगा। एक चीख़ उसके मुँह से निकलते निकलते रह गई। उसने काँपते हाथों से हार ले लिया। शाहज़ादा ने मुस्करा कर उसकी तरफ़ देखा।

फिर बूढ़े से कहा, "तो मेरा आज ही रात का कूँच है और अब मुझे तैयारी करना है।" वे उठ खड़े हुये और चल दिये।

ताजमहल जड़वती देखती रह गई। वह सोच रही थी, या ख़ुदा ख़ुर्रम और यूसुफ़ एक ही हैं।

"प्यारी ताज, मुझे बिदा दो, और ख़ुदा से दुआ करो कि सुर्ख़रू होकर लौटूँ।"

"मगर आप बड़े बेदर्द हैं, बड़े छलिया हैं, आपने मुझे ठगा क्यों?"

"प्यारी ताज, माफ़ करो, मगर मैंने तुम्हें कहा न था कि तुम शाहज़ादा पर रीझ कर ग़रीब यूसुफ़ को भूल जाओगी।"

"आह अगर तुम वही यूसुफ़ होते।"

"और शाहज़ादा ख़ुर्रम होने में क्या हर्ज है दिल रुबा।"

शाहज़ादा के महल में मुझ जैसी हज़ार होंगी, मगर यूसुफ़ के लिये तो मैं एक ही थी।

'ओह, यह न कहो ताज़ ज़िन्दगी सलामत है तो ता क़यामत तुम्हें प्यार करूँगा, मरने तक और मरने के बाद भी। दुनिया इस प्यार का सबूत देखेगी और देखती रहेगी।

उसने अपने आलिङ्गन में युवती को भर लिया और उसकी आँसु भरी आँखों पर हज़ार हज़ार प्यार देकर घोड़े पर सवार हो अँधेरे में खो गया।

भोली अल्हड़ युवती देखती रह गई।

नूरजहाँ का कौशल

[जैसे मुग़ल सम्राट् जहाँगीर पृथ्वी पर अपनी समता नहीं रखता वैसे ही साम्राज्ञी नूरजहाँ की भी समता नहीं है। सम्राट् जहाँगीर जैसा प्रतापी बादशाह प्रेम के राज्य में एक निरीह भावुक पुरुष था। इसके विपरीत साम्राज्ञी नूरजहाँ का भाव साम्राज्ञी क्लिओपेट्रा और एलिजाबेथ से भी बढ़ा चढ़ा था। इस कहानी में इस प्रेमी शाही कबूतर-कबूतरी के जोड़े का एक मनोरंजक रेखा चित्र है। जहाँ राजनीति और तत्कालीन साम्राज्य की खटपटों में उलझा सुलझा प्रेम का अटपटा व्यापार चलता दीख पड़ता है। कहानी में साम्राज्ञी नूरजहाँ की—]

१

सन् १६२५ का अन्त हो रहा था। दिल्ली के तख़्त पर मुग़ल-सम्राट् जहाँगीर बैठकर निश्शंक सुरा, संगीत और सुन्दरी सेवन में जीवन का मध्य भाग सार्थक कर रहे थे, और रूप, गर्व और प्रतिहिंसा की देदीप्यमान मूर्ति, ईरान के एक साधारण सामंत ग्यासबेग की कन्या, बादशाह के मन्त्री आसफ़ की बहन तथा शेर अफ़ग़ान की विधवा महरुन्निसा मलिका नूरजहाँ के नाम से उदय होकर उस इन्द्रिय-परायण मुग़ल-सम्राट् और अमूल्य रत्नों से परिपूर्ण मुग़ल-तख़्त को अपने स्वेच्छाचारी पदाघात से हिला रही थी।

छोटे और बड़े अमीर-उमरा से लेकर साधारण प्रजा जन

तक यह जान गए थे कि दिल्ली के तख्त पर जो दुबला-पतला, रसीली आँखोंवाला व्यक्ति सम्राट् के नाम से बैठा दीखता है, यह एक सूखी लकड़ी है, जो रूप की धधकती हुई ज्वाला से तख्त-सहित धीरे-धीरे जल रही है।

नूरजहाँ में रूप था, दर्प था, प्रतिहिंसा थी, क्रोध था, और थी स्त्री-हृदय की दुर्बलता तथा स्त्री-मस्तिष्क का कौशल, साहस और प्रत्युत्पन्न मति की अपूर्व प्रतिभा।

और जहाँगीर में क्या था? असाधारण बड़प्पन, उदारता, प्रेम और सुकुमारता। निस्संदेह वह बादशाह के पद के योग्य न था। बादशाह होने के लिए जो कठोरता, रूक्षता, कौशल और दूरदर्शिता मनुष्य में होनी चाहिए, जहाँगीर में न थी। वह एक प्रेम का मतवाला रईस था। वह जिस स्त्री के रूप में अपने यौवन के उदय-काल में डूबा, उसके स्वाद का प्रलोभन वह दस वर्ष व्यतीत होने पर भी, उस रूप के जूठे और किर-किरे होने पर भी, उसमें ज़हर मिल जाने पर भी, संवरण न कर सका। उसके लिए उसने लोक-लाज, न्याय, अपना पद-गौरव, साम्राज्य, सभी कुछ संसार की दया पर छोड़ दिया। रूप का ऐसा दयनीय भिखारी शायद ही पृथ्वी पर उत्पन्न हुआ हो।

२

आगरे के क़िले में, एक छोटे किन्तु सजे हुए कक्ष में, कार-चोबी काम के चँदोवे के नीचे, मसनद पर, सम्राट् जहाँगीर बैठे ऊँघ रहे थे। ज्वलंत रूप-शिखा नूरजहाँ, उनसे तनिक

हटकर दाहनी ओर बैठी, संगमरमर की प्रतिमा प्रतीत होती थी। सेनापति महाबतख़ाँ और महामंत्री आसफ़उद्दौला सामने अदब से खड़े थे। उनके आगे शाहज़ादा ख़ुर्रम नीचा सिर किए खड़े थे। प्रातःकाल का समय था, और वह छोटा-सा दरबार सन्नाटे में डूबा हुआ था। बादशाह ने अचानक आँख उठाकर कहा—"महाबतख़ाँ, हमारे बहादुर सिपहसालार, हम तुमसे बहुत ख़ुश हैं, तुमने तख़्त की भारी ख़िदमत की है, जो शाहज़ादे को दरगाह में ले आए हो। और शाहज़ादा, तुम्हारे सब क़सूर माफ़ किए जाते हैं, और हम दारुसल्तनत में तुम्हारा इस्तक़बाल करते हैं।"

शाहज़ादा ख़ुर्रम और सेनापति महाबतख़ाँ ने अदब से सिर झुकाया। इसके बाद शाहज़ादा घुटने झुकाकर तख़्त को चूमने को ज़रा आगे बढ़े।

नूरजहाँ ने एक तीव्र दृष्टि से दोनों व्यक्तियों को घूरकर कहा—"मगर ठहरो, तुम गुनहगार हो, पहले तुम्हारी कैफ़ियत ली जायगी।"

शाहज़ादे ने दृढ़ स्वर में कहा—"मेरी कैफ़ियत ?"

"हाँ, तुम्हारी कैफ़ियत।"

"किस मामले की ?"

"तुमने शाहज़ादे ख़ुसरू का क़त्ल कराया है, और अपने वालिद और दीनोदुनिया के बादशाह के ख़िलाफ़ साज़िश की है। बग़ावत करके हथियार उठाए हैं।"

"मैंने कैफ़ियत जहाँपनाह की ख़िदमत में लिख भेजी थी, अब उसके दुहराने की ज़रूरत नहीं।"

"ज़रूरत है !" नूरजहाँ ने दर्प से कहा।

शाहज़ादे ने बादशाह की ओर ताककर कहा—"जहाँपनाह !"

बादशाह ने नीची नज़र करके कहा—"शाहज़ादा ख़ुर्रम, तुमने जो कैफ़ियत लिख भेजी थी, उसे यहाँ दुहरा दो।"

क्षण-भर शाहज़ादा नीचा सिर किए सोचते रहे, फिर उन्होंने बादशाह को लक्ष्य करके कहा—"जहाँपनाह, कैफ़ियत मुझे किसके सामने देनी होगी, शाहंशाहहिन्द जहाँगीर के सामने या कि शेर अफ़ग़न की विधवा के सामने ?"

नूरजहाँ ने गुस्से से होठ काटकर कहा—"तुम्हें यह न भूलना चाहिए कि तुम मुजरिम और शाही गुनहगार हो।"

शाहज़ादे ने उस पर ध्यान न देकर बादशाह से कहा—"क्या जहाँपनाह सचमुच मुझसे कैफ़ियत चाहते हैं ?"

"हाँ, चाहता हूँ।"

"तब मेरा क़ुसूर माफ़ करने के बहाने यहाँ बुलाकर क़ैद करना ही आपका मक़सद था ?"

नूरजहाँ ने त्योरियों में बल डालकर कहा—"तुम किससे बातें कर रहे हो शाहज़ादा ?"

"अपने पिता से।"

"मगर तख़्ते-मुग़लिया की हुकूमत मेरे हाथ में है। मैं तुम्हें एक साल की क़ैद का हुक्म देती हूँ। महाबतख़ाँ, शाहज़ादे को गिरफ़्तार करो।"

महाबतख़ाँ अब तक चुपचाप खड़े थे। अब उन्होंने दृढ़ स्वर में कहा—"माफ़ कीजिएगा मलिका साहबा, मैं शाहज़ादे को यह ज़बान देकर लाया हूँ कि आपके सब क़ुसूर माफ़ किए जायँगे। ऐसी हालत में शाहज़ादे को गिरफ़्तार करना धोके-बाज़ी है, जिसमें बन्दा शरीक होने से इनकार करता है।"

नूरजहाँ ने क्रोध से काँपते हुए कहा—"इन्साफ करना और हुक्म करना मेरा काम है, तुम्हारा काम हुक्म मानना है तुम नौकर हो।"

"मलिका साहिबा, महावत खाँ इस हुक्म को मानने से इनकार करता है।"

नूरजहाँ ने तख्त से उठते हुए कहा—"तुम्हारी इतनी मजाल! कोई है, महावतखाँ को गिरफ्तार कर लो।"

महावतखाँ ने स्थिर-गंभीर स्वर से कहा—"मलिका साहबा, बीस साल से मैं इन सिपाहियों का सिपहसालार हूँ। इन्हें मैं अगणित बार युद्ध के मैदान में ले गया हूँ, और फ़तह का सेहरा इनके सिर पर बाँधकर ले आया हूँ। कितनी बार इन्होंने जानें देकर मेरी हिफ़ाज़त की हैं, अब इनकी इतनी जुर्रत नहीं हो सकती कि मुझे गिरफ़्तार करें। हाँ बादशाह सलामत, आपके सामने यह सिर और हाथ हाज़िर हैं, बाँधिए या क़त्ल कीजिए।"

यह कहकर महावतखाँ ने बादशाह के सामने हाथ बढ़ा दिए।

बादशाह ने कहा—"महावतखाँ, तुम्हारे बाँधने की जंजीर अभी नहीं तैयार हुई। जाओ, हम तुम्हें माफ़ करते हैं। और शाहज़ादा, तुम्हें भी हम माफ़ी बख्शते हैं, जाओ।"

यह कहकर बादशाह उठ खड़े हुए। नूरजहाँ पैर से कुचली हुई नागिन की भाँति फुफकारती रह गई।

३

"मैं महावत से जरूर कैफ़ियत तलब करूँगी।"

"नूरजहाँ, वह कैफ़ियत नहीं देगा।"

"क्या जहाँपनाह की हुक्म-उदूली करेगा ?"

"इससे भी ज़्यादा कर सकता है। वह बग़ावत भी कर बैठे, तो कोई ताज्जुब नहीं।"

"मैं चाहती हूँ कि उसे बंगाल की सूबेदारी से हटाकर पंजाब का सूबेदार बनाकर भेज दूँ। मगर लाहौर उसकी मातहती में न रहे।"

"ऐसी बेइज्ज़ती वह नहीं बर्दाश्त कर सकेगा।"

"वह सल्तनत का नौकर है, अगर नमकहरामी करेगा, तो सज़ा दी जायगी।"

"वह महज़ नौकर ही नहीं है, सिपहसालार है, सारी फ़ौज उसके हाथ में हैं, फ़ौज उसे प्यार भी करती है। इसके सिवा उसने हमेशा सल्तनत की ख़िदमत बहादुरी और दयानतदारी से की है।"

"जहाँपनाह का यही हाल रहा, तो यह सल्तनत आँधी में उखड़े हुए दरख़्त की तरह धूल में मिल जायगी। मैं उसे पंजाब में अपने सामने रक्खूँगी, उसकी ताक़त को कभी न बढ़ने दूँगी।"

"जो जी में आवे, सो करो। नूरजहाँ, तुम्हारे कहने से मैंने उसे सिपहसालार के पद से हटाकर उसी के शागिर्द परवेज़ की मातहती में बंगाल का सूबेदार बनाया, अब तुम्हें यह भी नहीं पसंद है। प्रिये, सल्तनत में क्यों आग लगाती हो, सब काम ठीक-ठीक तो हो रहा है।"

"तब जहाँपनाह, अपनी सल्तनत को सँभाल लें, अगर मुझ पर भरोसा नहीं।"

"नहीं प्रिये, मेरी सल्तनत है शराब और स्वर-लहरी, लाओ,

मैं उसमें डूब जाऊँ, फिर जो जी में आवे, वह तुम करना। इस मुग़ल तख़्त और उसके मालिक की मालिक तुम हो।"

"जहाँपनाह को आदाब हो, जलाल मुल्ला ने जो काबुल में बग़ावत का झण्डा उठाया है, उसके लिए क्या हुक्म है? मेरा ख़्याल है, जहाँपनाह को ख़ुद चलना चाहिए।"

"अच्छी बात है, तैयारी कर लो। अब लाओ एक प्याला, और एक तान सुना दो, जिससे तबियत हरी हो जाय।"

४

लाहौर से कुछ इधर शाही छावनी पड़ी थी। बादशाह एक गावतकिए के सहारे लेटे थे। नूरजहाँ शराब की सुराही आगे धरे जाम भर-भरकर बादशाह को देती, प्रत्येक बार कहती—"बस, अब नहीं।" बादशाह हाथापाई करके कहते—"एक—बस—एक और।"

आसफ़उद्दौला ने तंबू में प्रविष्ट होकर कहा—"महाबतख़ाँ ख़ुद आए हैं, और जहाँपनाह की क़दमबोसी किया चाहते हैं।"

नूरजहाँ ने कहा—"मुलाकात न होगी। कह दो।"

बादशाह चौंक उठे। उन्होंने कहा—"यह क्यों नूर, वह सिर्फ़ मिलना चाहते हैं।"

"कुछ ज़रूरत नहीं है जहाँपनाह, उसे अभी इसी वक़्त पंजाब को रवाना हो जाना चाहिए।"

आसफ़ ने बादशाह की ओर देखकर कहा—"क्या जहाँपनाह का यही हुक्म है?"

"हाँ, यही हुक्म है।'

आसफ़ के चले जाने पर बादशाह ने कहा—"नूरजहाँ, सल्तनत के इतने बड़े उमराव की इस क़द्र बेइज़्ज़ती करना क्या ठीक हुई ?"

"बिल्कुल ठीक है जहाँपनाह, इससे पहले उसने एक खत अपने दामाद के हाथ भेजा था।"

"उसमें क्या लिखा था ?"

"वह हुज़ूर के सुनने क़ाबिल नहीं।"

"तुमने क्या जवाब दिया ?"

"कुछ नहीं, उसके दामाद का सिर मुँड़ा, गधे पर सवार कराकर महावत के पास भेज दिया।"

"ओफ़् ! नूर, जो चाहे सो करो, एक प्याला शीराज़ी मिलाकर दे दो। कलेजा जैसे निकला जा रहा है।"

५

हिंदु-कुलपति महाराणा उदयपुर के अपने निवास में बैठे कुछ परामर्श कर रहे थे। द्वारपाल ने सूचना दी—"मुग़ल-सेनापति महावतख़ाँ आए हैं।"

महाराणा ने आश्चर्य से देखकर कहा—"उन्हें आदर-पूर्वक ले आओ।"

सेनापति का अचानक आ जाना राणा के लिये आश्चर्य की बात थी। महावतख़ाँ ने आकर राणा को प्रणाम किया। राणा ने सादर स्वागत करके पूछा—"सेनापति, यों अचानक बिना सूचना दिए कैसे आ गए ?"

महावतख़ाँ ने कहा—"मैं सेनापति नहीं हूँ राणा साहब !"

राणा ने हँसकर कहा—"समझ गया, अब आप बंगाल के सूबेदार हैं।"

"वह भी नहीं महाराणा!"

"यह क्या! तब अब आप क्या हैं?"

"कुछ नहीं, सिर्फ महाबतखाँ, एक पुराना सिपाही, जिसकी रगों में राजपूतों का रक्त है, पर जो शरीर से मुसलमान है।"

महाराणा ने चिंतित होकर कहा–"क्या बात है खाँ साहब? खैराफ़ियत तो है?"

"सब खैराफ़ियत है राणा साहब, मैं सिर्फ एक नौकरी की खोज में आपके यहाँ आया हूँ। यदि एक सेनापति का पद आपकी अधीनता में मुझे मिले, तो मैं आशा करता हूँ कि मैं उसका अपमान न करूँगा।"

"मैं अभी आपको सारी मेवाड़ की सेना का सेनापति बनाता हूँ।"

"महाराणा की जय हो। मेरी एक अर्ज़ी और है।"

"कहिए?"

"मैं कुछ तनख्वाह पेशगी लेना चाहता हूँ।"

राणा हँस पड़े। बोले—"क्या चाहिए?"

"सिर्फ पाँच हजार चुने हुए सवार और छ महीने की छुट्टी।"

"यह कैसी तनख्वाह है खाँ साहब?"

"शायद महाराणा को मंजूर नहीं।"

"मंजूर है। आप सैनिकों को स्वयं चुन लीजिए। अगर हर्ज न हो, तो बता दीजिए कि सवारों का क्या कीजिएगा?"

कुछ नहीं, जहाँपनाह से ज़रा मुलाक़ात करूँगा। मैं मिलने

आया था, मुलाक़ात नहीं हुई। दामाद को खत लेकर भेजा, तो उसका सिर मुँड़ाकर गधे पर सवार कराया गया। अब ज़रा एक बार बादशाह से मिलना ज़रूरी है। फिर ज़िंदगी-भर आपके चरणों का दास रहूँगा।"

राणा ने गंभीर होकर कहा—"मैं वचन दे चुका। मुझे कुछ आपत्ति नहीं।"

महाबतख़ाँ ने उच्च स्वर से कहा—"महाराणा की जय हो।"

६

"उसके साथ फ़ौज कितनी है?"

"सिर्फ़ पाँच हज़ार।"

"और उस पर उसकी यह ज़ुरत!"

"बेगम साहबा, बादशाह और फ़ौजदार उस पार हैं, और पुल पर महाबतख़ाँ का क़ब्ज़ा है।"

"तब तुम तमाशा क्या देख रहे हो—पुल पर धावा बोल दो।"

"पुल पर जाना नामुमकिन है।"

"तब तैरकर पार जाओ।"

"मलिका, यह खतरनाक है।"

"धावा करो। महावत, हमारा हाथी दरिया में छोड़ दो। तीर और गोलियों की परवा नहीं। बादशाह सलामत दुश्मन के क़ब्ज़े में जाया चाहते हैं।"

❀ ❀ ❀ ❀

"बस, अब मार-काट बन्द करो। मुग़ल-सिपाहियो, हथि-

यार रख दो। फिजूल जानें मत दो। मुझे सिर्फ बादशाह से मिलना है।"

जहाँगीर ने खेमे से बाहर आकर कहा—"यह क्या है महाबत ?"

"जहाँपनाह, बन्दा हाजिर है।"

"मामला क्या है ? यह लड़ाई कैसी ?"

"कुछ नहीं हुजूर, जब मैंने देखा कि किसी तरह जहाँपनाह से मुलाक़ात नहीं हो सकती, तो मजबूरन यह रास्ता अख्तियार करना पड़ा।"

"हमारी फ़ौज कहाँ है ?"

"सब उस पार है। पुल मैंने जला दिया है।"

"समझ गया। महाबत, मैंने तुम्हें माफ़ किया, अपनी फ़ौज वापस कर दो।"

"हुजूर, ये लोग बिना मेरी ज़िन्दगी की जमानत लिए जाना नहीं चाहते।"

"इसका मतलब ?"

"मतलब यही कि महाबतख़ाँ जहाँपनाह का पालतू कुत्ता नहीं कि जब आप चाहें 'तू' करके बुलावें, और वह दुम हिलाता हुआ चला आवे, आप जब लात मारकर दुतकार दें, तो दुम दबाकर भाग जाय।"

बादशाह ने गुस्से से होठ चबाकर कहा—"ख़ैर, क्या जमानत चाहते हो ?"

"यह फिर देखा जायगा, इस वक़्त तो शिकार का वक़्त हो गया है। तशरीफ़ ले चलिए।"

"इस वक़्त शिकार ? और मेरा घोड़ा ?"

"मेरा यह घोड़ा हाज़िर है।"

"मलिका कहाँ है?"

"वह महफ़ूज़ जगह में हैं, उन्होंने दरिया में हाथी डाल दिया था, मेरे सिपाही उन्हें निहायत अदब से ले आए हैं।"

"समझ गया। हम लोग तुम्हारे क़ैदी हैं!"

"हुज़ूर, मैं इतनी गुस्ताखी तो नहीं कर सकता। मगर इतनी अर्ज़ ज़रूर है कि शाहंशाह अकबर के तख्त पर से इस वक़्त जो ताक़त हुकूमत कर रही है, वह एक पागल और बेलगाम ताक़त है, उससे इंसाफ़ तो हो ही नहीं सकता, अलबत्ता यह तख्त मिट्टी में मिल सकता है।"

"तुम्हारी मंशा क्या है महावत?"

"एक बार मुलाक़ात किया चाहता था, आप तसरीफ़ रखिए।"

"अच्छी बात है, कहो किसलिए मुलाक़ात चाहते थे?"

"हुज़ूर, मेरा एक मुक़द्दमा है।"

"किसके ख़िलाफ़?"

"वह चाहे भी जिसके ख़िलाफ़ हो, मगर मैं हुज़ूर से यह उम्मीद करता हूँ कि आप इंसाफ़ करेंगे।"

"मैं ज़रूर इंसाफ़ करूँगा।"

"मेरा मुक़द्दमा मलिका साहबा के ख़िलाफ़ है।"

"क्या मुक़द्दमा है?"

"उन्होंने शाहज़ादा खुशरू की हत्या कराई है।"

"और?"

"किसी खास मतलब से वह हत्या उन्होंने शाहज़ादा खुर्रम के सिर मढ़ी है।"

"और ?"

"वह जहाँपनाह की आड़ में मनमाना जुल्म करती हैं इससे हुजूर के शाही रुतबे और नेकनामी में खलल पहुँचता है।"

"और ?"

"बस, हुजूर अगर इनका सुबूत चाहें, तो....।"

"मैं इन बातों को जानता हूँ, सच है।"

"इन क़ुसूरों की सज़ा मौत है....।"

"महावत....।"

"हुजूर, इंसाफ़ की दुहाई है। यह मलिका के क़त्ल क हुक्मनामा है। दस्तख़त कीजिए।"

"महावत....।"

"हुजूर, गुनाह साबित है, इंसाफ़ कीजिए।"

"तब लाओ।" जहाँगीर ने दस्तख़त कर दिया, और कहा—महावत, अब और क्या चाहते हो ?"

"कुछ नहीं जहाँपनाह ! अब आप आराम फ़र्मावें।"

७

जहाँगीर और नूरजहाँ दो पृथक्-पृथक् ख़ेमों में नज़रबंद थे। दोनों पर सख़्त पहरा था, परंतु उनके आराम का काफ़ी-बंदोबस्त किया गया था। नूरजहाँ ने महावत से कहला भेजा—"मैं मरने को तैयार हूँ, मगर एक बार बादशाह को देखना चाहती हूँ।"

महावतख़ाँ बादशाह की अनुमति पाकर उसे शाही डेरे में ले आए। जहाँगीर ने उसे देखते ही आँखें नीची कर लीं।

नूरजहाँ ने कहा—"जहाँपनाह! ये दस्तखत आपके हैं?"

बादशाह चुप रहा नूरजहाँ ने कहा—"समझ गई, तब यह जाल नहीं है! यही मैं जानना चाहती थी। मेरे खाविंद, मैं मरने को तैयार हूँ; मगर हुजूर एक बार उन हाथों को चूम लेने दीजिए, जिन्होंने मुझे प्यार किया था, और जिन्होंने मेरे मौत के परवाने पर दस्तखत किए हैं।" इतना कहकर वह बादशाह की तरफ झपटी। बादशाह ने कसकर उसे छाती से लगा लिया, और भरे हुए कंठ से कहा—"नूर, मैंने दस्तखत नहीं किए हैं। तुमने सैकड़ों क़ुसूर किए, ये मेरे प्यारे बच्चे का खून किया—मैंने कब इसे देखा, तब ये दस्तखत मेरे कैसे हो सकते हैं! मेरे हाथों ने दस्तखत किए जरूर हैं, पर हैं ये महाँवतखाँ के दस्तखत।"

नूरजहाँ ने एक बार महावतखाँ की ओर देखा, और सिर झुका लिया। वह धीरे-धीरे बादशाह के बाहु-पाश से पृथक् हुई, और फिर महावतखाँ के सामने खड़े होकर बोली—"महावत, अब तुम मुझे क़त्ल करो। पर एक औरत पर फ़तह हासिल करके तुम कुछ सुर्खरू न होगे। खैर!" नूरजहाँ और कुछ न कह सकि वह टप-टप आँसू गिराने लगी।

शायद नूरजहाँ ने जिंदगी में पहली बार ही आँसू गिराए थे।

बादशाह से न रहा गया। उन्होंने अवरुद्ध कंठ से कहा—"महावत!"

"जहाँपनाह!"

"नूरजहाँ की जान बख्श दो। मैं तुमसे यह भीख माँगता हूँ।"

क्षण-भर महावतख़ाँ चुप रहे, और फिर उन्होंने एक लम्बी साँस ली। उनके मुँह से निकला—"जहाँपनाह की जैसी मर्ज़ी।"

इसके बाद महावतख़ाँ तीर की भाँति खेमे से बाहर निकल गया, और दोनों प्रेमी परस्पर पाश-बद्ध होकर रोने लगे। क्या ये प्रतापी सम्राट् और दर्प-मूर्ति साम्राज्ञी थे!

८

आज बादशाह हाथी पर सवार होकर शिकार करने निकले हैं। महावतख़ाँ का कड़ा पहरा बादशाह पर है। बादशाह की ज़िद से मलिका भी हाथी पर सवार हो गई है। महावतख़ाँ साथ है। रावी के किनारे-किनारे धीरे-धीरे हाथी बढ़ रहा था, और फ़ौज का एक टुकड़ा धीरे-धीरे पीछे आ रहा था।

अचानक चीत्कार करके नूरजहाँ ने कहा—"महावत, हौदा ढीला है, ठीक करो। महावत जल्दी से हाथी की पीठ की ओर चला गया। क्षण-भर में नूरजहाँ बिजली की भाँति कूदकर हाथी की गर्दन पर आ बैठी, और ज़ोर से अंकुश का एक वार करके हाथी को नदी में हूल दिया। क्षण भर में ही देखते-देखते यह सब कौतुक हो गया। जब तक महावतख़ाँ दौड़े, तब तक हाथी दरिया में पहुँच चुका था। बादशाह ने विस्मित होकर नूरजहाँ के साहस को सराहा। नूरजहाँ ने दृढ़ स्वर से कहा—"जहाँपनाह, बेख़ौफ़ बैठे रहें।"

  

हाथी सकुशल दरिया पार उतर आया। नूरजहाँ भूल गई

थी कि किस प्रकार उसका मृत्यु-दण्ड टाला गया था। बादशाह शराब के घूँट पी रहे थे, उन्होंने प्याला खाली करके कहा—"नूर, तुमने बड़ी हिम्मत से मेरी जान बचाई।"

"और जहाँपनाह ने भीख माँगकर मेरी जान बचाई। कहिए, बादशाह कौन है?"

"तुम, नूर! एक प्याला अब और दे दो। और, जरा दिलरुबा उठाकर एक बिहाग की तान सुना दो।"

दे ख़ुदा की राह पर

भाग्य की मार से बेबस एक अन्धे, लाचार, बूढ़े शाहज़ादे भिखारी का रेखाचित्र है, जो अन्त तक शाहज़ादे का दिल रखता रहा। कहानी को एक चरित्रवान् तरुण ने अपने आदर्श त्याग और निष्ठा से बहुत उज्ज्वल किया है। पूरी कहानी एक मोहक संगीत के समान है]

१

मैं उसे बहुत दिनों से उसी स्थान पर बैठा देखा करता था। वह जामे मस्जिद की सीढ़ियों के नीचे, एक कोने में बैठा रहता था। उसके हाथ में एक पुरानी ऊनी टोपी थी, उसी को वह भिक्षापात्र की भाँति काम में लाता था। उसकी अवस्था सत्तर को पार कर गई थी, फिर भी वह खूब मजबूत दिखाई पड़ता था। उसका कंठस्वर सतेज और गंभीर था। उसके चेहरे पर एकाध चेचक के दाग़ थे। उसके मुँह से निकले हुए शब्द 'दे खुदा की राह पर' ही सदा सुन पड़ते थे, दूसरे शब्द बोलना वह जानता था या नहीं, कह नहीं सकते। उससे कोई कभी बात नहीं करता था। बातें करने पर वह कभी जवाब भी नहीं देता था। लोग उसे बहुधा पैसे दे देते थे। पैसा टोपी में डालने पर उसने कभी किसी को आशीर्वाद नहीं दिया। परन्तु उसके चेहरे के भाव, जो निरंतर अमिट रूप से बने रहते थे, देखकर अनायास ही मनुष्य की उस पर श्रद्धा हो जाती थी। संभव है,

वह मन ही मन आशीर्वाद देता हो। बहुधा मैंने देखा था, लोग चुपके से उसके निकट जाते, पैसा उसका टोपी में फेंकते और धीरे से खिसक जाते थे। वह तो अपनी अनवरत गति से 'दे खुदा की राह पर' की आवाज़ थोड़ी-थोड़ी देर बाद लगाता रहता था। घर से दफ़्तर जाने का मेरा रास्ता जामे मस्जिद होकर ही था। जामे मस्जिद से मैं ट्राम पकड़ता था। ट्राम की प्रतीक्षा में कभी-कभी मुझे कुछ देर अटकना पड़ता था। वह सीढ़ियों के जिस नुक्कड़ पर बैठता था, वहाँ मैं ट्राम की प्रतीक्षा में खड़ा रहता था। उस समय ट्राम आने तक मैं उसके एक रस और एक-सी भावभंगी से परिपूर्ण चेहरे को, आते-जाते तथा पैसा देनेवालों को और उनकी पोशाक भावना को ध्यान से देखता रहता था। मुझे इसका कुछ चाव-सा हो गया था।

मैंने उसे कभी कुछ नहीं दिया। एक पैसा देते हुए मुझे शर्म लगती थी। अधिक देते भी शर्म लगती थी। सभी तो पैसा देते थे, मेरा अधिक देना दंभ में सम्मिलित था। फिर, मेरी आमदनी भी इतनी संक्षिप्त थी कि मैं अधिक दे नहीं सकता था। और यह तो रोज का धंधा ठहरा।

२

वर्षा के दिन थे। दिन भर पानी बरसा था। दफ़्तर जाती बार देखा, वह एक कोने में खड़ा भीग रहा है। उस दिन उसे इस प्रकार निरीह भाव से भीगता देखकर मन पर आघात लगा। जी में ऐसा हुआ कि इसके लिए कुछ तो करना ही चाहिए। दफ्तर से जब मैं लौटा, तब वह अपने स्थान पर बैठा

था। बदली खुल गई थी। उस दिन दफ्तर से लौटते देर हो गई थी। अंधेरा होने लगा था। मैं क्षण भर रुककर उसकी ओर देखने लगा। वह अपने स्थान से उठा। उसने धीरे से, मानो वह आत्मनिवेदन कर रहा हो, कहा 'या खुदा आज तो कुछ भी नहीं।

उसने गंभीरता से अपनी दाढ़ी हिलायी, और अपनी लाठी टेकता हुआ चल दिया। मैं भी मंत्रमुग्ध की भाँति उसके पीछे हो लिया। मुझे उसके प्रति कौतूहल हो रहा था, क्योंकि उन सुपरिचित शब्दों के सिवा प्रथम बार ही मैंने उसके मुँह से निकले ये शब्द सुने थे।

२

वह पतली और सँकरी गलियों को पार करता हुआ धीरे धीरे, उसी लाठी की आँखों से राह टटोलता हुआ, चला जा रहा था। पीछे-पीछे मैं था। बस्ती का शानदार भाग पीछे छूट गया था। अब वह गरीबों के टूटे फूटे घरों के पास गुजर रहा था। अंत में एक खंडहर के समान घर के द्वार पर वह खड़ा हो गया। उसने कुंडी खटखटाई, और एक किशोरी बालिका ने आकर द्वार खोल दिया। यद्यपि मैं कुछ दूर था, फिर भी मैंने उस सुकोमल मूर्ति को देख लिया। उसे देखकर आँखें हरी हो गई। उन आंखों ने भी, मालूम होता है, मुझे देख लिया। यद्यपि उन दूध समान स्वच्छ आँखों की दृष्टि पड़ते ही मेरी आँखें नीचे को झुक गई थी, फिर भी जैसे मेरा मूक निवेदन वहाँ तक पहुँच चुका था।

वृद्ध को इस बात का कोई ज्ञान न था कि मैं उसका पीछा कर रहा हूँ। वे दोनों भीतर चले गए। दरवाज़ा बंद हो गया। मैं फिर भी खड़ा कुछ सोचता रहा। यह अंधा, बूढ़ा भिखारी कौन है, और इसके साथ यह स्निग्ध सुन्दरी बाला कौन है।

मेरी दृष्टि बंद द्वार पर थी। द्वार खुला, वे ही आँखें एक बार डोलायमान होकर मेरे मुख पर अटक गईं। मैं चमत्कृत होकर देखने लगा। उसने संकेत से मुझे निकट बुलाया, और कहा "आप बाबा से कुछ कहा चाहते हैं ?"

मैंने बिना सोचे ही जवाब दिया—"हाँ मैं उनसे कुछ बात किया चाहता हूँ।"

"आप आइए।"

वह पीछे हट गई। मैं भीतर चला गया। मेरे भीतर आने पर उसने द्वार बन्द कर लिया। भीतर से घर काफी बड़ा था। मक़ानियत तो कुछ न थी, मैदान काफ़ी था। उसमें एक नीम का पेड़ भी था। घर हर तरह साफ़ था। वृद्ध फ़कीर एक चटाई पर चुपचाप बैठा था।

बालिका ने कहा—"बाबा, यह आप हैं।"

बूढ़े ने दोनों हाथ फैला कर कहा—"आइए मेरे मेहरबान, मुझसे रज़िया ने कहा कि आप मेरे पीछे-पीछे आ रहे थे, और दरवाज़े पर खड़े थे। कहिए, मैं आपकी क्या खिदमत बजा ला सकता हूँ। बैठिए।"

बालिका ने एक चटाई का टुकड़ा लाकर डाल दिया था। मैं उसी पर बैठ गया। मैंने कहा है—"मैंने इस तरह आकर आपको जो तकलीफ दी, उसके लिए माफी चाहता हूँ। दर-असल मेरा कोई काम नहीं है। मगर मैं आपको अर्से से जाने-

मस्जिद पर देखता हूँ। मैंने आपको कभी कुछ नहीं दिया। लेकिन आज उठती बार आपके मुँह से यह सुनकर कि आज कुछ भी नहीं, मैं अपने को काबू में न रख सका। एक पैसा आप जैसे संजीदा बुजुर्ग के हाथ में रखते शर्म आती थी। ज्यादा की औक़ात नहीं। पर आज तो इरादा ही कर लिया, मगर हिम्मत न हुई कि आपको आवाज दूँ। यही सोचते यहाँ तक चला आया।"

बूढ़े ने सन्तोष से सारी बातें सुनी। फिर उसने आकाश की ओर अपने दृष्टि विहीन नेत्र फैलाकर कहा—"शुक्र है अल्लाह का। दुनियाँ में आप जैसे भी फरिश्ता खसलत इंसान हैं। ख़ुदा आपको बरकत दे। आप शायद हिन्दू हैं।"

"जी हाँ।" मैंने धीरे से कहा, और एक रुपया निकालकर बूढ़े के हाथ पर रख दिया।

रुपया हाथ से छूकर बूढ़े ने कहा—"ख़ुदा आपको ख़ुश रक्खे, मगर मैं अपने घर पर भीख नहीं लेता, ख़ुदा के घर के क़दमों पर बैठकर ही मैं भीख लेने की जुर्रत कर सकता हूँ, वह भी ख़ुदा की राह पर। यहाँ तो मेरा फर्ज है कि मैं आपकी, जहाँ तक हो, मिहमान नमाजी करूँ।"

यह कह कर बूढ़े ने रुपया वापस मेरी तरफ सरका दिया। इसके बाद रजिया को पुकार कर कहा—"बेटी, इन मिहरबान की कुछ तवाजा तो जरूर करनी चाहिए। यह हिन्दू हैं, और कुछ तो न खायँगे, इलायची घर में हों, तो जरा ला दो बेटी।"

रजिया दो इलायची ले आई। वह घुटनों के बल मेरे सामने बैठ गई। उसने अपनी सुनहरी हथेली मेरे सामने फैला

दी। उस पर दो ईलायचियाँ धरी थीं। उसने मुस्कुराकर कहा "इलायचियाँ लीजिए। घर में तश्तरी नहीं है।"

"घर में तश्तरी नहीं है" ये शब्द उसने कंपित कंठ से कहे। बूढ़े की आँखों में आंसू भर आए। उसने कहा—"तश्तरी नहीं है, तो उसका रंज क्यों, बेटी।"

उसने फिर आँसू पोंछकर कहा—"मिहरबान्मन्, बिटिया को नजर कुबुल कीजिये, जिससे मेरी और मेरे खानदान की इज्जत बढ़े।"

मैंने इलायचियाँ ले लीं। मैं इस फेर में पड़ा, क्या सचमुच बूढ़े का कोई खानदान भी है।

रुपया देने के कारण मैं लज्जित हो रहा था। मैंने कहा—"क्या मिहरबानी करके आप अपने कुछ हालात बतावेंगे, और कोई ऐसा काम भी, जिसे करके मैं आपको कुछ खिदमत बजा लाऊँ।"

बूढ़े ने कहा—"पिछले नौ वर्षों में यह मैं आपसे आज बातें कर रहा हूँ, रजिया और मैं इतने दिनों से यहाँ अकेले रहते हैं, हमलोग न किसी से मिलते, न कोई हमसे मिलता है। आपने आज अचानक आकर इस बूढ़े, अन्धे, अपाहिज पर इतनी मिहरबानी की।" उसने झुककर मेरे दोनों हाथ चूम लिए।

रजिया ने आकर कहा "बाबा आज खाने का क्या होगा"

बूढ़े ने दो पैसे टेंट से निकालकर कहा "सिर्फ ये ही हैं। एक पैसा तुम हस्ब मामूल दरगाह पर खैरात दे आओ, और एक पैसे के चने ले आओ। आज उन्हीं पर औकात बसर होगी।"

रजिया चली गई। मैं बूढ़े के दृष्टि हीन तेजवान् मुँह को देखता रहा। फिर मैंने कहा "रजिया क्या आपकी बेटी है।"

"नहीं, पोती है। इसकी माँ इसे जन्मते ही मर गई थी। इसे मैंने इन्हीं हाथों से पाला है।"

"रज़िया के वालिद शायद नहीं हैं।"

"नहीं!" बूढ़े का स्वर भर्रा गया। फिर उसने जरा खाँस कर कहा। उसे आज मरे चौदह साल हो गए। बूढ़े की दृष्टि-हीन आँखें मानो कुछ देखने लगीं। उनमें पानी छलछला आया। उसने एक बार आकाश की ओर उन आँखों को उठाया और फिर जमीन पर झुका दिया।

मुझे ऐसा मालूम हुआ कि बूढ़े का जीवन गंभीर भेदों से परिपूर्ण है। परन्तु मुझे उससे कुछ पूछने का साहस नहीं हुआ। मैंने फिर कहा—"क्या मैं आपकी कोई खिदमत बजा ला सकता हूँ।"

"मेरी कोई खिदमत ही नहीं है, मिहरबान। मैं खुदा का एक अदना खिदमतगार हूँ" उसके होंठ काँपकर रह गए, मानो बलपूर्वक कुछ उसके मुख से निकल रहा था, वह उसे जबरदस्ती रोक लिया।

रजिया लौट आई। और उसने भुने चने बूढ़े के सामने, एक साफ कपड़े के टुकड़े पर, फैला दिए। बूढ़े ने पानी मँगाकर वजू किया, नमाज़ पढ़ी, और फिर मेरे पास आकर कहा—"अगर एक मुट्ठी इसमें से आप कबूल फर्माएँ, तो मैं समझूँ कि अब भी मैं मिहमाननवाजी करने के लायक हूँ।" उसने चनों का रूमाल आगे बढ़ाया।

मैंने थोड़े चने मुट्ठी में लेकर कहा—"मेरे बुजुर्ग, इन्हें मैं नियामत समझता हूँ।"

रजिया पास आ बैठी। हम तीनों ने चने खाए। इसके बाद मैं उठ खड़ा हुआ। बूढ़े ने खड़े होकर मुझे विदा किया। मेरा नाम पूछा और दुआ दी।

४

मैं रोज उसे वहीं भीख माँगते देखता, पर कभी कुछ देने तथा बोलने का साहस न करता। हाँ बीच-बीच में मैं उसके घर, घंटा दो घंटा जाकर बैठ आता था। उसका असली परिचय प्राप्त करने की मैंने बहुत चेष्टा की, पर न प्राप्त कर सका। अलबत्ता मुझे यह अवश्य मालूम हो गया कि बूढ़ा कोई बहुत ही बड़े खानदान का आदमी है। चार साल गुज़र गए। हम लोगों में बहुत घनिष्ठता बढ़ गई थी। बूढ़े का यह नियम था कि वह तमाम भीख में से आधी मज़ार पर खैरात कर देता था। यह मज़ार उसी की धर्म-पत्नी का था, जिसे उसने कभी अपने प्राणों से ज्यादा प्यार किया था, और अब पूजा करता था। आधी भीख वह अपने और रजिया के काम में लाता था।

एकाएक मैंने देखा, वह अब सीढ़ियों पर नहीं है। कई दिन बीत गए, आखिर मैं एक दिन उसके घर गया। देखा बूढ़ा मृत्यु-शय्या पर पड़ा है, रजिया अकेली उसकी सेवा कर रही है। रजिया अब सत्तरह साल की अप्रतिम सुन्दरी थी। परन्तु उसके सौन्दर्य में चमेली के समान माधुर्य था। वह पवित्रता, गौरव और गंभीरता के केन्द्र स्वरूप थी। उसके गुणों पर मैं मोहित

था, और मेरे मन में उसके प्रति आदर था। मेरी आयु यद्यपि तीस वर्ष के लगभग ही थी, और मेरी पत्नी का जीवन के आरंभ ही में देहान्त हो गया था, फिर भी उसके प्रति प्रेम की भावना से देखने का साहस मैं न कर सका था। वह मुझे "बड़े भाई" कहकर पुकारती थी।

मुझे देखते ही उसने मुझसे कहा—"बड़े भाई, देखो बाबा की क्या हालत हो गई है। कई दिन से तुम्हें याद कर रहे हैं, पर मैं इन्हें छोड़ अकेली इतनी दूर तुम्हारे घर नहीं जा सकती थी।"

बूढ़े को होश हुआ, तो रजिया ने उसके पास जाकर कहा—"बाबा बड़े भाई आये हैं।"

बूढ़े ने मेरी तरफ मुख किया, मैंने समझ लिया, अब चिराग बुझने में विलम्ब नहीं। मैंने उसका हाथ अपने हाथ में लेकर कहा—"ओफ, आप इतने कमजोर हो गए, मुझे खबर भी नहीं भेजी। आज तो आप मेरे मन की साध मिटा दीजिए, मुझे कुछ खिदमत करने का हुक्म दीजिये।

बूढ़े ने कंपित स्वर में कहा—"अच्छा, तुम मेरी ओर से रजिया का एक काम कर दोगे?

"बहुत खुशी से।" मैंने उत्सुकता से कहा। बूढ़े ने मंद स्वर से रजिया को कुछ संकेत किया। वह कोठरी के एक कोने से कपड़े में लपेटा हुआ एक पुलिंदा ले आई। बूढ़े ने उसे अपने हाथ में ले, छाती से लगा, फिर मेरी तरफ बढ़ाते हुए कहा—"इन कागजों को सम्भाल कर रखना, जान से भी ज्यादा, और जब रजिया अठारह साल पार कर जाय, तब खोलना। इसमें जैसा लिखा है, वैसा ही करना। जबान दो, करोगे।"

मैंने जबान दी। बूढ़े ने फिर कहा—"मेरे बाद रज़िया यहाँ न रह सकेगी। उसे तुम जहाँ मुनासिब समझो, रखना, परन्तु अपनी हिफाजत से दूर नहीं। मगर यहाँ से निकलकर और मेरे बाद वह फकीरी हालत में न रह सकेगी।" बूढ़े ने एक जड़ाऊ कंगन निकालकर दिया, और कहा—"इसे बेचकर मेरी रज़िया को आराम से रहने का बन्दोबस्त कर देना।"

बूढ़ा कुछ देर चुप रहा। वह अपने हृदय में उबलते हुए तूफान को शांत कर रहा था। कुछ ठहर कर उसने मुझे और रज़िया को पास बुलाकर, दोनों के हाथ पकड़ अपनी छाती पर रखकर कहा—"मेरे मिहरबान, तुम हिन्दू हो और रज़िया मुसलमान, मगर खुदा की नजर में दोनों इंसान हैं। मैं उम्मीद करता हूँ, तुम रज़िया के लिए कभी बेफिक्र न होगे।"

कुछ ठहर कर कहा—"मेरे बच्चो, तुम लोग अपना नफा नुक-सान सोच लेना।"

हम दोनों सिर झुकाए बूढ़े की टूटी चारपाई के पास बैठे रहे। कुछ देर बाद बूढ़े ने कहा—"बड़े भाई, अब तुम रज़िया को लेकर चले जाओ। मेरा वक्त नजदीक है, मेरी मिट्टी सर-कार के आदमी सँगवाँ देंगे।" वह जोश में हाँफने लगा।

हम लोगों ने उसकी कुछ न सुनी। हम वहीं डटे रहे। तीन दिन बाद उसकी मृत्यु हुई।

रज़िया मेरे घर रहने लगी। मेरी बूढ़ी मौसी देहात में रहती थी। उसे मैंने बुलाकर घर में रख लिया था। सुविधा के ख्याल से मैंने रज़िया का नाम कमला रख लिया था। मैंने वह कंगन बेचा नहीं। उसका मूल्य बीस हजार से भी अधिक

कुता गया था। रजिया ने कहा—"इस कंगन से दादा बातें किया करते थे। यह दादी का कंगन था।" मैंने भी उसे एक पूजनीय वस्तु समझा।

५

रजिया का अठारहवाँ साल खत्म हो गया। मैंने उस दिन रजिया को नई साड़ी पहनाई। फूलों का हार पहनाया। उसके बाद मैंने वह पुलिन्दा खोला। उसमें कुछ कागजात थे, एक शाही मुहर थी, कुछ फर्मान थे, और एक विवरण पत्र था। उसे पढ़ने पर पता लगा, बूढ़ा सुलतान टीपू का बेटा खिजरखाँ था। उसका बेटा रजिया का पिता युद्ध में मारा गया था। सरकार के साथ कुछ ऐसी सन्धियाँ थीं कि रजिया को अठारह वर्ष की होने पर सरकार से उसे एक इलाका, जो उसके बाप का जब्त कर लिया गया था, मिलता। रजिया के जन्म और वंश का प्रमाण रजिया के गले के तावीज़ में था। तावीज़ खोल डाला गया।

समय पर सब कागजात हाईकोर्ट में दाखिल कर दिए गए। छः मास बाद रजिया की जागीर मिल गई। इसकी आमदनी पाँच लाख रुपया सालाना थी।

जागीर मिलने पर रजिया को लेकर मैं इलाके पर चला गया। वहाँ पर दखल वगैरा लेकर, सब व्यवस्था करके जब मैं चलने लगा, तो रजिया ने आँखों में आँसू भर कर, मेरा हाथ पकड़कर कहा—"अब जाओगे कहाँ।"

मैंने कहा—"रजिया रानी, अब "बड़े भाई" न कहोगी।"

"नहीं !" रज़िया की आँखों में आँसू और होठों में हँसी थी। वह लिपट गई।

मैंने कहा "रज़िया 'बड़े भाई' का कुछ लिहाज करो। दर्द सिर्फ तुम्हारे ही दिल में नहीं, दूसरी जगह भी है, पर जो हो गया, सो हो गया।"

रज़िया ने बहुत समझाया, पर मैं न माना। मैंने कहा—"एक बार 'बड़े भाई' कह दो, तो जाऊँ।"

रज़िया रोते रोते धरती पर लोट गई। उसने कहा "बड़े भाई, फिर यहीं रहो, जाते कहाँ हो।"

"बहन के घर कैसे रहूँ।"

रज़िया ने आँसू पोंछकर कहा "तब जाओ बड़े भाई"

मैं घर चला आया। वही मेरी नौकरी थी। मेरे रोम-रोम में रज़िया थी, और रज़िया के रोम-रोम में "बड़े भाई।"

× × ×

आज तीस साल इस घटना को हो गए हैं। रज़िया की आयु पचीस वर्ष की हो गई है, मैं तिरसठ को पार कर चुका हूँ। हम दोनों ने ब्याह नहीं किया। मैं साल में एक बार रज़िया के घर जाता हूँ। उसकी सब आमदनी सार्वजनिक कामों में जाती है। सरकार से उसे बेगम की उपाधि मिली।

अब मुझे पेन्शन मिलती है। बूढ़े शाहज़ादे का वह चित्र सदैव मेरी आँखों में रहता है।

पतिता

[एक वेश्या का मर्मस्पर्शी जीवन-स्केच इस कहानी में है। यह स्केच साधारण नहीं है, इसमें जैसे करोड़ों इन पतिता अभागिनियों के सुख दुःखों की एक परिपूर्ण मूर्ति खड़ी कर दी गई है! यह एक विवरणात्मक कहानी है, जिसे कहानीकला की दृष्टि से श्रेष्ठ कहानियों में गिना जा सकता है। कहानी की सफलता इसी में है—कि पाठक का हृदय बरबस इन पतिता बहिनों की दुरवस्था से द्रवित होकर उनके प्रति गहरी संवेदना और सहानुभूति से भर जाता है।]

१

मेरा नाम आनन्दी है। जब मेरी आयु ११ वर्ष की थी, तब मैं अपनी मौसी के साथ दिल्ली आई। मैंने कभी दिल्ली देखी न थी, सुनी थी। बहुत तारीफ सुनी थी—बिजली की रौशनी, ट्राम, पङ्खे, मोटर—सब कुछ मेरे लिए स्वप्न-सा था। अब तक मैं देहात में रही, पहाड़ में खेली और बड़ी हुई। मेरे माँ-बाप जमींदार थे, नाम जबान पर लाना नहीं चाहती, मैं कलङ्किन हुई, उन्हें क्यों बट्टा लगाऊँ? मैं उनकी इकलौती बेटी थी, गोदों में पली और प्यार में नहाई, मेरे बराबर सुखी कौन था? जब मैं सुनहरी धूप में तितली की तरह उछलती-कूदती सामने की हरी-भरी पर्वत-श्रेणियों पर दौड़-धूप करती थी, मेरी पड़ोसिनें गीत गातीं, घास का गट्ठर पीठ पर लादे मेरे सामने

से निकल जाती। झरने का मोती के समान उज्ज्वल और बर्फ के समान ठंडा पानी, इठला-इठला कर पीती, उसमें पत्थर मार कर उसे उछालती, कभी पत्ते की नाव बना कर बहाती!

ओह! मैं कितना हँसती थी? हँसते-हँसते आँसू निकल आते थे। आज तो रोने पर भी नहीं निकलते, मालूम होता है कलेजे का सारा रस सूख गया है। लड़कियों को मैं खूब मारती, पर पीछे उन्हें चुमकार-पुचकार कर राज़ी भी कर लेती। मुझमें अकड़ खूब थी, पर मैं भोली भी एक ही थी, जो कोई मुझसे प्यार से बोलता, मैं उसकी चाकर, जो ज़रा टेढ़ा हुआ और बस फिर मैं भी टेढ़ी!

जीवन क्या होता है, मैंने कभी नहीं जाना; मैं बड़ी हो जाऊँगी, यह मैंने नहीं सोचा; मुझ पर दुनियाँ की कोई ज़िम्मेदारी पड़ेगी, इसका ध्यान भी न था। भविष्य की आनेवाली सारी आँधियों और तूफ़ानों के भय से दूर मैंने हिमालय की पवित्र और सुखमयी गोद में अपने हीरे मोती से ग्यारह साल व्यतीत किए।

२

दिल्ली देखकर मैं सचमुच घबरा गई थी। और मौसी के घर मेंघुसते तो भय लगता था। वह घर था? दैदीप्यमान इन्द्रभवन था। वह सजावट देखकर मेरी आँखें बन्द होने लगीं। बढ़िया रंग-बिरंगे क़ालीन, दूध के समान उज्ज्वल चाँदनी, बड़े-बड़े मसनद, मख़मली गद्दे, मसहरियाँ, तस्वीर, सिङ्गारदान, आइने और न जाने क्या-क्या? मेरे पद-स्पर्श से, छू लेने से कहीं कोई

वस्तु मैली न हो जाय, बिगड़ न जाय—इस भय से मैं सिकुड़ कर एक कोने में खड़ी हो गई। मैं मैली-कुचैली, गाँव की अल्हड़ बच्ची इस घर में कहाँ रहूँगी? रह-रह कर भाग जाने की इच्छा होती थी।

मौसी ने मेरी द्विविधा को भाँप लिया, उसने पास आकर दुलार से कहा—जा बेटी! ऊपर हीरा है और भी कई जनी हैं, तू भी वहीं जाकर बैठ।

मैं ऊपर चल दी क्या देखा? कह ही दूँ? रूप वहाँ बिखरा पड़ा था। मानों किसी ने चाँद को जोर से जमीन पर दे मारा हो और उसके टुकड़े बिखरे पड़े हों। सब दस पन्द्रह थीं। सभी एक से एक बढ़ कर। सभी अलबेली मस्तानी थीं, और चुहलबाजी में लगी थीं। किसी की कंघी-चोटी हो रही थी, किसी का उबटन; कोई धोती चुन रही थी, कोई गजरा गूँथ रही थी। सभी नवेलियाँ थीं, यौवन उनके अङ्गों से फूट रहा था। यौवन और सौन्दर्य के ऊपर एक और उन्मादिनी वस्तु थी, जिसे तब न समझा था, बहुत दिन बाद, जब मैं भी उनमें मिल गई, समझा—वह थी वेश्यापन की धृष्टता। और उसने उन्हें आफ़त बना रक्खा था।

वे लड़कियाँ न थीं, स्त्रियाँ भी न थीं; वे थीं आग के छोटे-छोटे अङ्गारे। पड़े दहक रहे थे, छूते ही छाला उत्पन्न कर दें। इन सबके बीच में हीरा थी। उसका भी कुछ वर्णन तो करना ही पड़ेगा, वैसा रूप तब से आज तक, यद्यपि मैंने जीवन भर रूप के सौदे किए—पर देखा ही नहीं, सुना भी नहीं। इटली के कारीगर की बनाई सङ्गमर्मर की प्रतिमा की भाँति, हंस की सी सुराहीदार और सफ़ेद गर्दन उठाए वह बैठी बाल सुखा

रही थी। एक धानी डुपट्टा उसके वक्ष-स्थल पर अस्त व्यस्त पड़ा था, पर उस अनिन्द्य वक्षस्थल को शृङ्गार करने के लिए और किसी परिधान की आवश्यकता ही न थी। प्रभातकालीन नव-विकसित कमल-पुष्प के सम न उसकी बड़ी-बड़ी आँखें और फूले हुए लाल-लाल होंठ! हल्के पारदर्शी रङ्ग से प्रतिबिम्बित से गाल उसकी मुख-मुद्रा को लोकोत्तर बना रहे थे। उसके दाँत किस कारीगर ने बनाए थे, यह मैं मूर्ख क्या बताऊं! पर उनकी चमक से चौंध लगती थी। हीरा ने अनायास ही मुझे देखा, सभी ने देखा, मैं सहम कर ठिठक गई! उसने मुस्करा कर पास बुलाया, गोद में बैठा कर पुचकारा, प्यार किया, मेरे देहाती वस्त्रों को देखा और हँस दी। उसने प्यार से मेरे गालों पर चुटकी ली और मेरे शृंगार में लग गई। उबटन किया, चोटी में तेल दिया, कपड़े बदले और न जाने क्या-क्या किया। इसके बाद मेज़ पर उचका कर मुझे रख दिया, और सहेलियों से बोली—"देखो री, हमारी छोटी रानी कितनी सुन्दर है।" उसने मुझे चूमा, फिर तो मुझ पर इतने चुम्बे पड़े कि मैं घबरा गई। उन चुम्बों में, उस प्यार में, उस शृङ्गार में मैं भूल गई—अपना बचपन, वे पवित्र खेल-कूद, वे पर्वत-श्रेणी, उपत्यकाएँ, माता-पिता, सहेली—सभी को। मेरे मन में एक रङ्गीन भाव की रेखा उठी और धीरे-धीरे मैं मदमाती हो चली!

३

परन्तु, उस भीषण ऐश्वर्य और ज्वलन्त रूप की जड़ में जो पाप था, उसे मैं कैसे समझती? पाप कहते किसे हैं, यही मैं

कैसे जानती ? जीवन के सुख और ऐश्वर्य के पीछे एक धर्म-नीति छिपी रहती है, यह मुझे उस घर में बताता कौन ? फिर भी मेरी आत्मा ही ने मुझे बताया, वही आत्मा अन्त तक मेरे कर्मों का नियन्ता रहा।

मैं उस घर में सब कुछ देखती थी। मैं कह चुकी हूँ कि मुझ-सी दस-पन्द्रह थीं। पर मैं सब से छोटी थी, नई आई थी, सबके पृथक्-पृथक् सजे हुए कमरे थे। सबके पास बढ़िया गहने-कपड़े इत्र और न जाने क्या-क्या था। सबकी खातिर भी खूब होती थी, चोचले भी चलते थे, पर मैं मौसी के पास सोती और रहती थी। सबके उतरे गजरे पहनना और बची हुई मिठाई खाना मेरा काम था। धीरे-धीरे मेरे मन में ईर्ष्या होने लगी। मैंने एक दिन मौसी से कह भी दिया, रूठ भी गई, आखिर मैं क्या आसमान से गिरी हूँ, मुझे भी एक कमरा, पलङ्ग और वैसे ही सब सामान चाहिए, जो औरों के पास हैं।

मौसी हँस पड़ी। उसने मुझे गोद में लिया, चूमा और कहा—"धीरज रख बेटी ! वह समय भी आ रहा है, जब तू इन सब से चढ़-बढ़ कर रहेगी।" उस समय की मैं बड़ी बेचैनी से बाट जोहने लगी। साथ ही करने लगी अध्ययन उन सबका, जिन पर मेरी ईर्ष्या थी।

मेरी ईर्ष्या की प्रधान पात्री थी हीरा ! वही तो सब में एक थी, घर-घर नगर में और दूर-दूर उसकी चर्चा थी, उसका रूप था ? दुपहरी थी, उसकी वह दन्त पंक्ति, मोती-सा रङ्ग कटीली आँखें, मन्द हास्य, हंस की-सी गर्दन, साँचे में ढाला बदन, कितने सेठ-साहूकार, राजा-रईस, नवाब-शाहजादों को अधीर बनाए था—वे उसके पास आते, क्या-क्या आदर-भाव करते,

दासियाँ हुक्म की बन्दी रहतीं ! सुनहरे काम का छपरखट और उसका हरा रंगीन कमरा, क्या मैंने लाखों बार भी डाह की नज़र से न देखा होगा ?

एक दिन अचानक मौसी ने कहा—"आनन्दी, ले अपना कमरा पसन्द कर। कौन-सा लेगी, मैं अब तुझे भी अलग कमरा दूँगी, उसे तेरे मर्ज़ी का सजाऊँगी। कपड़े-लत्ते साड़ी जो तेरी पसन्द का हो तू बाज़ार में जाकर ले आ। ले यह एक हज़ार रुपए, सिर्फ कपड़े और शृङ्गार-पटार के लिए हैं। जेवर मैं तुझे अलग दूँगी।" इतना कह कर उसने नोटों का एक बण्डल मेरी गोद में डाल दिया और कहा—"शाम को हीरा के साथ जाकर ज़रूरी सामान ख़रीद ला। ले, मैं अपना कमरा तेरे लिए खाली किये देती हूँ, मैं बुढ़िया बावली किसी कोठरी में पड़ रहूँगी।"

मैंने आकाश छुआ। कब शाम हो और मैं बाज़ार चलूँ। निदान एक ही सप्ताह में मेरा कमरा घर-भर में इन्द्रभवन था। मैं रात-दिन उसकी सजावट में लगी रही, खाना-पीना भी छोड़ दिया, साथ वालियाँ दिल्लगी करती थीं, पर मैं समझती न थी। कभी-कभी उनकी बातों से भय-सा लगता था, उनका क्रूर-हास्य शङ्का उत्पन्न करता था—मानो इस साज-शृङ्गार में एक रहस्य है, पर मैं उमङ्ग में थी।

देखते-देखते मेरा रङ्ग बदल गया। जितने छैले घर में आते थे, मुझ पर टूटे, पर मौसी का बड़ा भय था। क्या मजाल जो ज़रा कोई बढ़ कर बातें करता ! साथ वालियों पर मुझे डाह थी, पर अब वे मुझ पर जलती थीं, भेद तो अभी खुला न था, पर मुझे इसमें मज़ा आता था ज़रूर !

उस दिन से छठे दिन की बात है। मैं सो रही थी, दिन

ढल चुका था, मौसी ने बुला कर कहा—"बेटी, नहाधोकर नई साड़ी पहन ले, बालों का अङ्गरेजी जूड़ा बाँध ले, पैरिस की जरीकट साड़ी पहन ले, और जरा सलीक़े का ध्यान रख। ख़बरदार, नादानी न करना।" मैं कुछ समझी, कुछ नहीं—चली आई। मन में उथल-पुथल मच गई, नहीं कह सकती भय से या आनन्द से।

रात सिर आ गई और मेरा शृङ्गार खतम ही न होता था। १० बजे एक अल्पवयस्क सुन्दर कुमार ने मेरे कमरे में प्रवेश किया, मैंने इन्हें कभी न देखा था। एकान्त में मेरे पास किसी पुरुष का आना प्रथम बात थी, पर बहुत सी बातें तो मैं देख-भाल कर ही समझ गई थी। फिर भी मैं डर गई, मैंने सहम कर उनसे कहा—"मौसी उधर हैं, आप वहाँ जाइए।"

उन्होंने हँस कर कहा—"जल्दी क्या है, जरा देर आपसे भी बातें कर लूँ?" अब मैं क्या कहती? चुप बैठ गई!

उन्होंने कहा—क्या आप नाराज हो गई?

"जी नहीं।"

"फिर चुप्पी क्यों?"

"आप कुछ दर्याफ़्त करें तो जवाब दूँ।"

बस बातों का सिलसिला चल गया, और क्या-क्या हुआ, वह सब कहने से फ़ायदा? सबका अभिप्राय यही है कि अन्त में मैं उस युवक के हाथ बिकी, उसने मुझे सब कुछ दिया और मैंने उसे भी! मैं वेश्या थी भी नहीं, और उसकी वृत्ति को समझती भी न थी! मेरा जीवन था, आयु थी, समय था और उसका प्रभाव था, मैं क्या करती? मैंने अपना तन, मन उसे दिया, और उसने? मैंने जो आज तक न पाया था, वह दिया।

उस दान के सम्मुख अब तक के सभी ठाठ तुच्छ थे। मैं नारी जीवन का रहस्य समझी, पर यहीं तक होता तो मेरे बराबर सुखी कौन था? पर मेरी तक़दीर में वेश्या-जीवन का रहस्य समझना लिखा था!!

× × × ×

एक महीना स्वप्न की तरह बीत गया। ज्यों-ज्यों महीना बीतता था, वे चिन्तित और उदास होते थे। मैं पूछती, पर वे बताते नहीं, टाल जाते! एक दिन मैंने उन्हें घेर लिया। उन्होंने कह दिया—सिर्फ तीन दिन और मुझे तुम पर अधिकार है आनन्दी! इसके बाद तुम मेरे लिए ग़ैर हो जाओगी।

"यह क्या बात है?"

"मैं तुम्हारे लिए अगले महीने की तनखाह नहीं जुटा सकता।"

तनखाह कैसी?"

"तीन हज़ार रुपए महीने पर मैंने तुम्हें तुम्हारी माँ से लिया था।"

"आह! क्या मैं गाय-भैंस की तरह बेची गई हूँ!"

"ऐसा होता तो फिर क्या बात थी? मैं तुम्हें ऐसी जगह ले जाता, जहाँ किसी की दृष्टि न जाती, पर तुम किराए पर उठाई गई हो, मैंने एक महीने का किराया दिया, अब जो देगा, वह मेरे स्थान पर होगा।"

"मैं तड़प उठी, यह कैसे सम्भव है? मैं तुम्हें प्यार करती हूँ, क्या तुम नहीं करते?"

"जान से बढ़ कर!"

"फिर हमारे बीच में कौन है?"

"रुपया !"

"मैं उस पर लात मारती हूँ।"

"पर तुम्हारी मौसी तो उस पर मरती हैं।"

"मैं उससे कहूँगी।"

"बेसूद है।"

"क्या तुमने कहा था ?"

"मैं एक हज़ार देने को तैयार हूँ।"

"यह क्या थोड़े हैं ?"

"वे कहती हैं—एक हज़ार माहवारी आनन्दी की जूतियों का खर्च है।"

"पर मैं तो अपना शरीर और जान तुम्हें दे चुकी।"

"इसका तुम्हें अधिकार नहीं !"

मैं रोने लगी, वे चले गए।

मैं रात भर रोती रही; मेरी आँखें फूल गईं और छाती फटने लगी। सुबह होते ही मौसी ने कहा—"बेटी, आज तुझे एक मुजरे पर जाना है, सब सामान तैयार करके लैस हो जाना।

जो कहना चाहती थी, न कह सकी। सोचा—लौट कर कहूँगी।

४

मेरा नाम हीरा है, बस इतना ही समझ लीजिए। मैं और कुछ नहीं बता सकती। समझ लीजिए मैं धरती फोड़ कर पैदा हुई और धरती में समा जाने की इच्छा से जी रही हूँ। हज़ारों

मनुष्यों ने मेरे शरीर को देखा, बलात्कार किया और होनी-अनहोनी सब हुई। इनमें राजा-महाराजाओं से लेकर, घृणास्पद कलङ्की और रोगी भी थे—सभी ने एक ठीकरे में खाया। लोग कहते हैं कि मैंने रूप पाया और यह भी कहते हैं कि उसे खूब बेचा। पर मुझे सब कुछ बेच-खरीद कर मिला क्या? इस अभागिनी के मन की बात कौन सुनेगा? कौन इस पर आँसू बहाएगा, जगत् में मेरा सगा है कौन?

फूल के कीड़ों का नाम बहुतों ने सुना होगा, पर उस जहरीले कीड़े ने खाया मुझे! हाय, दुनिया कैसी प्यारी थी, कैसा साज-शृङ्गार, वस्त्र, सुगन्ध, मौज-बहार, हास्य उन सबको अब याद करती हूँ—वे सब कहाँ चली गईं, स्वप्न की माया की तरह!!

श्री क्या वस्तु, यह मुझे आज मालूम हुआ, जब मैंने खोत्व खो दिया! धर्म मेरा साक्षी है। मैंने रूप को बेचा नहीं, मैंने उसका मोल न कभी जाना, न किया, अभागिनी सीधी-सादी बालिका अपने रूप को कितना देखती—देखने वाले देखते हैं यही कैसे समझती, यही तो मरने की बात हो गई। मैं जब तक बची रही—तब तक की तो बात हो जाने दीजिए पर दिल्ली आने पर? न माँ थी, न बाप था, भाई था—वह भी चला गया। पर जो थी, वह माँ से भी ज्यादा सगी, स्वयं हाथों से नहलाती, उबटन लगाती, सुगन्ध लगाती, गजरों से सजाती और मोटर में बैठा कर सैर कराती! तब कौन मेरे बराबर सुखी था—मुझे कुछ काम न था। उस्ताद जी आते, उनकी सफ़ेद दाढ़ी, भद्दी सी मोटी ऐनक और मीठी-मीठी बोली, कैसी प्यारी थी। वे गाना सिखाते, मैं विनोद से उनके गले की नक़ल करती। वह इतनी ठीक उतरती कि रास्ते चलते खड़े हो जाते

मैं इतराती थी, उत्तम से उत्तम भोजन-वस्त्र बिना माँगे हाज़िर थे। मैं बड़ी हुई, तीसरे पहर से ही उबटन-शृङ्गार, केश-विन्यास और नई साड़ियों की पसन्द और पहनने का जो उपक्रम चलता तो दिए जल जाते। इत्र से भभकते हुए उस कमरे में नर्म क़ालीन पर मैं इठला कर बैठती। बड़े-बड़े सेठों के जवान आते, मेरी स्वर-लहरी पर लोट जाते, रुपयों की बौछार करते। जब आधी रात बीतने पर झोली भर रुपए ले मैं नई माँ को देती तो वह छाती से लगा लेती। बारम्बार बेटी कहती, मैं ज़रा भी थकान न मानती, पड़ कर जो सोती तो प्रभात था।

हाय ! मैं समझती थी—यह सब मेरा आदर है, यह गायन-कला मेरा गुण है, उस पर सैकड़ों गुणज्ञ रीझ रहे हैं। पर यह भेद तो पीछे खुला, वह मेरा नहीं, मेरे शरीर का, रूप का आदर था। वह गायन तो एक बहाना, एक छल था, एक तीर था, जिससे शिकार मारे जाते थे। मेरी अज्ञानावस्था में कितने शिकार मारे गए, यह मैं अब क्या बताऊँ।

उस दिन कोई त्योहार था, शायद तीज थी, मैं नहा कर बैठी थी। मेरी एक सहेली ने मुझे बुला भेजा था। मैं जाने की तैयारी में थी कि माँ ने बुलाया, कहा—बेटी, वह जो नई बनारसी साड़ी आई है, पहन लो। आज तेरी तक़दीर का सितारा बुलन्द हुआ, महाराज ××× ने तुझे नौकर रख लिया है। तुझे वहाँ जाना है, अभी मोटर आ रही है। मैंने चाहा था कि तुझे रानी बना दूँगी, वह इच्छा पूरी हुई, अब देर न कर।

मैं खाक-पत्थर कुछ भी न समझी। रानी बनने की बात को कुछ समझी, रानी बनने में मुझे क्या उज्र था, पर नौकरी

का क्या मतलब ? मैंने पूछा—नौकर रखने से क्या मतलब ? मैं किसी की नौकरी न करूँगी ! वाह ! अब मैं झाड़ू लगाऊँगी और किसी की नौकरी करूँगी।

बुढ़िया हँस पड़ी, हँसते-हँसते लोट गई, उसने मुझे गोद में छिपा कर कहा—मेरी प्यारी बेटी, कैसी नादान है। धीरे-धीरे सब समझेगी। झाड़ू तू लगावेगी ? वहाँ बीस दासी तेरी खिद-मत करेंगी।

मैं समझ ही न सकी, पर मुझे आनन्द न आया। मैं भय और चिन्ता में पड़ गई, वहाँ मेरा है कौन ? मुझे कौन प्यार करेगा, कौन क्या करेगा, मैं बेचैन हो गई। मैं मूर्खा, इस वृद्धा को ही अपना सब से बड़ा हितू समझती थी। जहाँ गई वहाँ फाटक पर पहुँचते ही मेरे होश उड़ गए। ऐसी बड़ी कोठी, ऐसा सुन्दर बागीचा, जन्म में न देखा था। गाड़ी पहुँचते ही सङ्गीन-धारी सिपाही ने गाड़ी रोक कर पूछा—गाड़ी में कौन है ?

मौसी ने कुछ कान में कह दिया, वह रास्ता छोड़ कर खड़ा हो गया।

गाड़ी धड़धड़ाती चली। फव्वारे उछल रहे थे, रौसें अत्यन्त सुघड़ाई से कटी थीं और उनमें कटोरे के बराबर गुलाब खिल रहे थे। सुन्दर साफ सुर्ख सड़कें और सामने वह महा-सुन्दर धवल प्रासाद। वहाँ पहुँचते ही दो सन्तरियों ने हमें उतारा, तमाम मकान सङ्गमर्मर से मढ़ा था, मक्खी के भी पैर रपटें। मैं डरती-डरती पैर रखती, दीवारों और तस्वीरों को देखती, अचल खड़े सन्तरियों को घूरती चली जा रही थी। चलने तक की आहट न होती थी, सोच रही थी कि हे ईश्वर ! इस महल में रहने वाला कौन भाग्यवान है।

एक सजे हुए कमरे में हमें बैठा कर, सन्तरी चला गया। उसमें मखमल का हाथ भर मोटा गद्दा पड़ा था, और साटन के पर्दे दरवाज़े पर थे। गद्देदार कुर्सियाँ, कौच और एक से एक बढ़कर सजावट और तस्वीर, क्या-क्या बयान करूँ? मैं पागल-सी बैठी देख रही थी; हृदय धक् धक् कर रहा था। बोलना चाहा, पर मौसी ने होंठ पर उँगली रखकर संकेत कर दिया।

थोड़ी देर में एक पहरेदार ने धीरे से पर्दा उठाकर, हमें अपने पीछे-पीछे आने का संकेत किया। कई बड़े-बड़े दालान, कमरे पार करती हुई अन्त में एक निहायत खुशरङ्ग सजे एक बड़े कमरे में पहुँची। देखा, एक तीस साला उम्र के अत्यन्त रुआबदार रूप और तेज की खान, एक पुरुष चुपचाप बैठे धुआँ फेंक रहे हैं। मौसी ने ज़मीन तक झुक कर सलाम किया और मैंने भी। हाथ का सिगार एक ओर फेंक कर महाराज उठ खड़े हुए। उन्होंने बड़ी बेतकल्लुफी से मौसी का हाथ पकड़ कर बैठाया, फिर मुस्करा कर मेरा मिज़ाज पूछा।

मैं तो सकते की हालत में थी। मौसी ने फटकार कहा—बेवक़ूफ़, सरकार मिज़ाज पूछते हैं और तू चुप है।

वे हँस दिए और बोले—हीरा यही है न?

"यही हज़ूर की कनीज़ है?"

"सच, पर देखना धोखा तो नहीं देती?"

"अय हय हुज़ूर, मेरी ज़बान टूट जाय?"

"अच्छा मिस हीरा, क्या तुम सिगरेट पीती हो?"

"जी नहीं सरकार!"

"अच्छा तब कुछ खाओ-पीओ!" इतना कहकर उन्होंने

घण्टी बजा दी। नौकर दस्तबस्ता आ हाजिर हुआ। उसे कुछ इशारा करके, उन्होंने मौसी का हाथ पकड़कर कहा—"जब तक यह कुछ खाए-पिए, हम लोग काम की बातें कर लें।

वे दोनों दूसरे कमरे में चले गए, और नौकरों ने फल, बिस्कुट मेवा मेरे सामने ला रक्खा। पर मैंने छुआ भी नहीं। मैं भयभीत हो गई थी, मैं समझ गई कि यहाँ फँसी। हाय! हृदय के एक कोने में नवाङ्कुरित प्रेम विकल हो उठा। पर करती क्या? मैंने निश्चय किया—मैं अवश्य मौसी के साथ जाऊँगी! हठात् महाराज ने कमरे में प्रवेश करके कहा—अरे! तुमने तो कुछ खाया ही नहीं।

"जी, मेरी तबियत नहीं है, क्या मौसी अन्दर हैं?"

"वे गईं।"

"और मैं?"

"तुम्हें यहीं आराम करना है।" वे मुस्कुरा कर बोले—"क्या तुम्हें डर लगता है?"

"जी नहीं।"

"यह जगह पसन्द नहीं?"

"जगह के क्या कहने हैं।"

"मैं पसन्द नहीं?"

"सरकार क्या फर्माते हैं" मैं शर्मा गई।"

एक आदमी शराब, प्यालियाँ, कुछ और खाने की चीजें चुन गया। महाराज ने प्याला भर कर कहा—"मिस हीरा, परहेज तो नहीं करतीं? करोगी तो भी पीना तो पड़ेगा?"

"हुजूर, मैं नहीं पीती।"

"मगर मेरा हुक्म है?"

"मैं मुआफ़ी चाहती हूँ।"

"क्या हुक्मउदूली करती हो?"

"मेरी इतनी मजाल।"

"बेवक़ूफ़ औरत पी!"—क्षण भर में उनकी आँखें लाल हो गईं और त्योरियाँ चढ़ गईं।

"मैं न पी सकूँगी!"

खूँटी से चाबुक उठा कर उस निर्दयी ने खाल उड़ाना शुरू कर दिया। मेरे चिल्लाने से कमरा गूँज उठा। मैं तड़प कर धरती में लोटने लगी। पर वहाँ बचाने वाला कौन था?

वे चाबुक फेंक कर बैठ गए। मैं ज्योंही उठी, उन्होंने प्याला भर कर कहा—पियो!

"मैं गटगट पी गई।"

मेरे हाथ से प्याला लेकर उन्होंने मेरे पास आकर कहा—"हीरा, मेरी दोस्त! आइन्दा कभी हुक्मउदूली की हिम्मत न करना। अरे, क्या तुम्हारी साड़ी भी खराब हो गई।" इतना कह उन्होंने घण्टी बजाई, एक लड़का आ हाज़िर हुआ। उसे हुक्म दिया—"जाओ ड्योढ़ियों से एक उम्दा साड़ी ले आओ।"

साड़ी आई। उसकी क़ीमत दो हज़ार से कम न होगी। वैसी साड़ी मैंने कभी न देखी थी। मैं अवाक् रह गई। ऐसा बेढब आदमी तो देखा न सुना। मैं साड़ी बदल कर चुपचाप उसके हुक्म की इन्तज़ारी करने लगी। मेरा ग़रूर और सारी चञ्चलता न जाने कहाँ चली गई।

उन्होंने निकट आकर प्यार के स्वर में कहा—जाओ उस कमरे में सो रहो, मैं भी ज़रा सोऊँगा। किसी चीज़ की ज़रूरत हो तो घण्टी देना, नौकर हुक्म बजा लावेगा।

हाय ! क्या मैं सोई ? वह पुरुष सो गया और मैं उसके पैर पकड़े बैठी रही। रात बीतने लगी, निस्तब्धता छा गई। हाँ मैं पैर पकड़े बैठी थी, उस पुरुष के, जो इतना कठोर और इतना उदार, ऐसा सख्त और ऐसा ज़िद्दी। और तस्वीर देख रही हूँ किसी और की, जिसे मैंने कुछ दिन पूर्व शरीर अर्पण किया था। मेरा हृदय और प्रेम आवारा गर्द बेघर-बार पुरुष की तरह भटक रहा था। वेश्यावृत्ति का जटिल रहस्य अब मेरी समझ में आया।

कई घण्टे व्यतीत हो गए। वे एकाएक उठ बैठे। उन्होंने कहा—बेवक़ूफ़ लड़की ! क्या तू सचमुच वेश्या नहीं है ? तेरे पास हृदय है ? तू प्रेम करना जानती है ?

मेरे जवाब से प्रथम ही उन्होंने मुझे उठा कर हृदय से लगा लिया। हाय ! यह पापिष्ठ शरीर यहाँ भी अर्पण करना पड़ा। पर मैं लज्जा से अपने आपको भी नहीं देख सकती थी।

कह ही दूँ, बिना कहे तो चलेगा नहीं; वैसा सुन्दर आदमी नहीं देखा था। रङ्ग गुलाब के समान, दाँत जैसे मोती की लड़ी, हास्य जैसे चाँदनी की बहार—मैं देखती रह गई, यही महाराज थे। उन्होंने पास बुलाया, प्यार से बगल में बैठाया, क्या-क्या किया, क्या-क्या कहा, वह सब बड़ी कठिनाई से भुलाया है, अब याद क्यों करूँ ?

मैंने समझा था, मैं नौकर हूँ, पर मैं थी रानी ! नौकर थे राजा साहब ! वे कितना प्यार करते थे, कितना लाड़ करते थे—मैं क्या होश में थी, जो समझ सकती। पुरुष स्त्री जाति को कब क्या देता है; पुरुष स्त्री-जाति को किस तरह सुख देता है, यह केवल वह स्त्री ही जान सकती है, जिसने वैसा सुन्दर,

उदार, दाता, दयालु पुरुष पाया हो। मैं कृतार्थ हो गई, मैं धन्य हुई, मुझे अब कुछ न चाहिए था। मेरे पास रूप था, यौवन था, शरीर था, मन था, आत्मा थी, प्रेम था, हृदय था—सभी मैंने उन्हें दे दिया, और उन्होंने जो देना चाहा, रुपया-पैसा, वस्त्र, रत्न—सभी मैंने तुच्छ समझा। मैंने एक बार तो निर्लज्ज होकर कह दिया था—"यह सब क्यों करते हो, तुम्हीं जब मुझे प्राप्त हो, फिर और कुछ मुझे क्या चाहिए।" वे हँसते थे। मेरे वे दिन हवा की तरह उड़ गए, मुझ मूर्ख ने यह समझा ही नहीं कि यह सब कुछ मेरे लिए नहीं, मेरे रूप के लिए है। और मैं स्त्री नहीं, वेश्या हूँ? इस वेश्यापन और रूप ही ने तो मुझे चौपट किया!!

५

यह विधाता की भूल है कि वह वेश्या है, अगर महारानी रूप और गुण में इससे शतांश भी होतीं, तो कदाचित जगत की जूठी पत्तल चाटने की ज़िल्लत में न पड़ता। लाखों मनुष्यों के सामने मैं राजा और महाराज हूँ, पर इस औरत के सामने आज एक कुत्ता, जो अपनी नीच स्वाद-वृत्तियों की तृप्ति के लिए सदा उन्मत्त रहता हो। वह जिस दिन आई तभी से मैंने उसे समझा। एक अफ़सोस तो यह है कि वह वेश्या है, दूसरा अफ़सोस यह कि वह यह बात अभी तक नहीं जानती। नारी-हृदय का नैसर्गिक प्रेम उसके पास अछूता था, वह उसने राई-रत्ती मुझे दिया; पर इससे फ़ायदा? वह मुझे वही समझती है, जो लाखों-करोड़ों स्त्रियाँ पुरुष प्राप्त करके समझती रही

हैं, पर मै तो यह जानता हूँ कि वह वेश्या है। उसकी माँ ने मासिक वेतन लेकर उस काल के लिए उसके शरीर पर मुझे अधिकार करने दिया है, जब तक मैं वेतन देता रहूँ। वह आत्मदान कर चुकी, यह तो सत्य है, पर इससे होता क्या है? इस अधिकार और पद्धति-शून्य असामाजिक आत्मदान को मैं क्या करूँ? क्या मैं खुल्लमखुल्ला उसे पत्नी कहने का साहस करूँ? सारे अखबार हाय-तोबा मचाकर धरती-आसमान उठा लेंगे? सरकार की आँखें नीली-पीली अलग हो जावेंगी? और सरदार, अफ़सर, परिजन दम निकाल देंगे। वह रानी बनने योग्य है; उसके रानी बनने से उसकी नहीं, महल की शोभा है। परन्तु इस बात को तो देखिए कि यह व्यभिचार और रूप का क्रय-विक्रय तो सब अन्धे और बहरों की तरह देख सुन रहे हैं, पर इस पाप को नीति और नियम के रूप में संसार नहीं देखना चाहता। फिर मैं क्यों झंझट लूँ? मैं राजा हूँ, युवा हूँ, सुन्दर हूँ, धनी हूँ, मैं ऐसे-ऐसे सौन्दर्य नित्य खरीदने में समर्थ हूँ। मैं अपना यह स्वार्थ-अधिकार क्यों त्यागूँ? कठोरता हाँ, यह कठोरता और निष्ठुरता तो है, परन्तु राजा बनकर मनुष्य को कितना कठोर बनना पड़ता है। राज्य-व्यवस्था कायम करने के लिए कठोरता गुण है, यदि मैं आत्म-सुख और शरीर भोग के लिए भी जरा निष्ठुर बनूँ तो कुछ हर्ज है? मैं उसे ठग नहीं रहा, मुआविजा दे रहा हूँ, इतना और उसे मिलेगा कहाँ? वह वेश्या है, जब तक उसमें रस है, मैं भरपूर मोल देकर लूँगा, पीऊँगा, बखेरूँगा, जब जी में आवेगा फेंक दूँगा। अजी! यह स्त्री-जाति ही तो है? सर्दी की धूप की तरह यह स्त्री-यौवन ढलता है। पुरुष होकर, सुयोग पाकर मैं

क्यों सुप्राप्त यौवन को छोड़ूँ? यह धन राजसत्ता फिर किस काम आवेगी? अन्ततः हमारा राजापन किस योग्य होगा? पूर्वकाल के राजागण युद्ध करते थे; जीवन, मृत्यु सदा उनके सम्मुख थी; देश के चुने हुए विद्वान उनके मन्त्री सदा उनके पास रहते थे। अब यह सब काम तो प्रबल प्रतापी हमारी दयालु सरकार कर रही है, हमें छुट्टी है। इस जीवन भर के अवकाश में यदि हम जी भर कर यौवन और भोग को, जो धन से प्राप्त हो सकता है, न भोगें तो हमारे बराबर अहमक़ कौन?

वह वेश्या है, वेश्या रहे; यह बात उसे समझ रखनी चाहिए। वह स्त्री नहीं बनी रह सकती, पुरुष से स्त्री को जो प्रतिदान वास्तव में मिलना चाहिए, वह उसे नहीं मिलेगा। जब तक वह यौवन के उभार पर है, वह मेरी है, मेरा सारा राज्य उसके पैरों में है। इसके बाद? इसके बाद भी चिन्ता क्या है? वह इतना सञ्चित कर लेगी कि जन्म भर को काफ़ी होगा।

६

नख-शिख से शृंगार किए वेश्या के सामने आँख के अन्धे और गाँठ के पूरे बेवकूफ और बेग़ैरत नौजवान कुत्ते दुम हिला-हिला कर जो प्रेम और आदर प्रकट करते हैं, वही क्या वेश्या का सम्मान है? वेश्या की असलियत तो उसके 'वेश्या' शब्द में ही है। वह ज़लील, अछूत और भले घर की बहू-बेटियों के देखने की वस्तु भी तो नहीं। वे शरीफ़ज़ादे रईस और राजा, जो समय पर जूतियाँ उठाते और जूतियाँ खाते हैं—यह तो

सहन ही नहीं कर सकते कि कभी सामना होने पर भी अपनी घरवालियों से हमारा परिचय तक तो करा दें। अपनी ज़लील हैसियत हम समझती हैं, हमारे हीरे-मोती, महल-पलँग, मस-हरी, मोटर, धन—कोई भी हमारी इस ज़लील हैसियत से हमारी रक्षा नहीं कर सकता। हाय ! वेश्या के हृदय को छोड़ कर, और कौन स्त्री-हृदय इस भयानक अपमान की धधकती आग को हँस कर सह सकता है।

उस दिन मेंह बरस रहा था, भयानक अँधेरा था, राज-महल स्टेशन से दूर न था, परन्तु महाराज शिकार खेलने वहाँ से १८ मील के फ़ासले पर गए थे। उनके अङ्गरेज दोस्त आए थे, वहीं उनकी दावत और जशन का नाच-रङ्ग था। दर्जन भर वेश्याएँ उसमें बुलाई गई थीं, मैं अभागिनी भी उनमें एक थी, मेरे नाच और गाने की ख्याति ने ही मुझे इस विपत्ति में डाला था, पर मैं करती भी क्या। वेश्या पर उसकी कुटनी माँ का असाध्य अधिकार होता है। मेरा शरीर अच्छा न था, मैं दो साइयाँ बजा कर आई थी, थकी थी सर्दी-जुकाम भी था, पर मुझे आना ही पड़ा। चार सौ रुपए रोज़ की फ़ीस छोड़ी भी कैसे जाती ? सारी नवाबी तो उसी के पीछे थी। अँधेरी रात और १० मील का सफ़र ! १०-१२ हम बदनसीब औरतें और हमारे मिरासी नौकर। साथ के लिए ४ प्यादे सिपाही और सामान लादने की एक बेगार में पकड़ी हुई बैलगाड़ी और दो लद्दू टट्टू। बस, यह हमारे स्वागत का प्रबन्ध उप-स्थित था। क्या ये कमीने राजा अपनी रानियों के लिए भी ऐसा ही स्वागत करने की हिम्मत कर सकते हैं ? पर रानियों से हमारी निस्बत ही क्या ?

सिपाहियों ने कहा—"बेगार में और कुछ मिला ही नहीं, सामान गाड़ी और टट्टू पर तथा हमें पैदल चलना होगा।" मैं तो धम से बैठ गई। इस अँधेरी रात में, बरसात के समय १० मील पैदल चलने से मैंने मरना ठीक समझा। मैंने साफ़ इनकार कर दिया सिपाहियों ने फबतियाँ उड़ाईं! अन्त को एक टट्टू पहिले मुझे दे दिया गया। मैंने उसे ही ग़नीमत समझा।

इस भाग्यहीनों की इस ठाट की सवारी चली, जिन्हें वहाँ पहुँचते ही अपनी चमक-दमक, रूप और नखरों से उन भेड़िए रईसों और उनके कमीने मेहमानों को पागल बनाना था। मैं चुपचाप टट्टू पर कम्बल ओढ़े बैठी थी, कमर टूटी जाती थी, और मैं गिरी जाती थी। पानी का छींटा बीच-बीच में गिर जाता था, पर मैं जानती थी कि वहाँ पहुँच कर मुझे बहुत मिहनत करनी है, आराम इस नसीब में कहाँ?

तीन घण्टे सफ़र करके हम वहाँ पहुँचे। पहुँचते ही पता लगा, महाराज और पार्टी कड़ी प्रतीक्षा कर रहे हैं, हमें तत्काल ही पेश्वाज पहन कर महफ़िल में पहुँचना चाहिए। मैंने अध-मरी सी होकर साथ की वेश्या से कहा—"अब इस समय तो मुझसे एक पग भी न उठाया जायगा।" उसने कहा—"बेव-क़ूफ़ हुई है, जल्दी कर, ऐसा कहीं होता है।" उसने जल्दी-जल्दी दो तीन पैग शराब पिलाई।

ओह! मुझे सजना पड़ा, मेरा अङ्ग-अङ्ग टूट रहा था, मैं मरी जाती थी, मुझे ज्वर चढ़ रहा था, पर मेरे पास मिनट-मिनट पर सन्देश आ रहे थे। हीरा प्रथम ही से महाराज के पास थी, उसने कहला भेजा—आनन्दी जल्दी कर, सभी लोग

तेरा नाम रट रहे हैं। मेरा शृङ्गार हुआ, जड़ाऊ गहने, जरी की पेश्वाज़, मोतियों के दस्त-बन्द और जड़ाऊ पेटी कस कर, इत्र और सेण्ट से तर-बतर हो, पाउडर से लैप हो दो पैग चढ़ा कर मैं छमाछम करती महफ़िल में पहुँची। मैं क्या पहुँची, बिजली गिरी—लोग तड़क गए। हाय-हाय से महफ़िल गूंज गई, महाराज पागल हो रहे थे और दोस्त लोग उछल रहे थे। फूलों के गुलदस्ते मुझ पर बरस रहे थे, वाह-वाह का तार बँधा था। क्षण-क्षण पर हरी, लाल, नीली बिजली की रौशनी पड़ कर मुझे अमूर्त मूर्ति बना रही थी। पर मेरा सिर दर्द से फटा जाता था, और जी मिचला रहा था, पर मैं मुस्करा कर छमाछम नाच रही थी। कहरवे की ठुमकी लेकर मैंने विहाग का एक टप्पा छेड़ा, साज़िन्दे उसे ले उड़े। महफ़िल में सकते की हालत हो रही थी, तालियों की गड़गड़ाहट की हद न थी, नोट और गिन्नियों का मेंह बरस गया, पर मैं मानों मूर्छित होने लगी, मुझे क़ै आने लगी थी और मैं अपने को अब क़ाबू न कर सकती थी। मैंने रौशनी वाले को आँख से एक सङ्केत किया। एक बार झुक कर महफ़िल को सलाम किया और भागी। महफ़िल में तालियाँ गड़गड़ा रही थीं। 'वन्स मोर' का शोर आसमान को चीरे डालता था। उधर मैं एक ज़ोर की क़ै करके बेहोश हो गई थी।

७

मैं कब तक उस दशा में पड़ी रही, नहीं कह सकती। किसी ने झकझोर कर जगाया। आँख खोल कर देखा, हीरा है।

मैं उसे देखते ही उससे लिपट गई। ध्यान से देखते ही मुझे मालूम हुआ, हीरा का वह रूप-रङ्ग उड़ गया है। वह पीली पड़ गई है और उसकी उन सुन्दर आँखों के चारों ओर नीले दाग़ पड़ गए हैं, गले की हड्डियाँ निकल आई हैं। उसे मैं देखती ही रह गई। वह मुझे इस प्रकार अपनी ओर देखते देख कर हँस पड़ी। हाय! वह हास्य भी कितना रूखा था! कौन हीरा के उस हास्य से सुखी होता? पर मेरे मुँह से बात न निकली। मैं नीची दृष्टि किए कुछ सोचने लगी।

हीरा ने कहा—उठ-उठ आनन्दी! जल्दी कर, तुझे महाराज ने याद फ़र्माया है।

उसके होंठ काँप गए, स्वर भी विकृत हो गया। मैं भी डर गई। मैंने कहा—यह किसी तरह सम्भव नहीं हो सकता। क्या म इस समय महाराज के पास जाने के योग्य हूँ?

"इस बात से क्या बहस है? तुझे चलना तो पड़ेगा ही।"

"मैं हर्गिज़ न जाऊँगी।"

उसने प्यार से मेरे सिर पर हाथ फेरा, पुचकारा और कहा—बेवक़ूफी न कर, यह रियासत है, अपना घर नहीं, महाराज की हुक्मउदूली की सज़ा तुझे मालूम?

"क्या मार डालेंगे?"

"यह तो कुछ सज़ा ही नहीं?"

"तब?"—मैंने शङ्कित स्वर से पूछा।

"ईश्वर न करे कि तुझे फजीहत उठानी पड़े। मेरी प्रार्थना यही है कि उनकी इच्छा में दख़ल न देना, इसी में ख़ैर है।"

इतना कहकर उसने मुझे उठाया। पर मैं उठ सकती ही न थी। किसी तरह उसने उठाया। अपनी एक बढ़िया साड़ी मुझे

पहना दी, बालों का शृङ्गार कर दिया और कुछ अदब-क़ायदे की बातें समझा कर ड्योढ़ियों तक पहुँचा आई। मैंने देखा, उसने मुँह फेर कर आँसू पोंछ लिए।

मेरा शरीर वास्तव में क़ाबू में न था, मैं सँभल ही न सकी, बदहवास की तरह महाराज के सामने गिर गई। वहाँ क्या हो रहा था, वह सब मैं देख न सकी। मेरे होशहवास दुरुस्त न थे, पर वहाँ सभी लुच्चे लुङ्गाड़े, नीच, शराबी इकट्ठे थे। वे नर-राक्षस और पिशाच थे। वे शराब पी-पीकर पशु हो गए थे। उन्होंने लज्जा बेच खाई थी। मुझ पर जैसी बीती, वह मैं वेश्या होकर भी वर्णन नहीं कर सकती। जगत का कोई भी ख़ूँखार पशु किसी अबला स्त्री पर इतना अत्याचार न कर सकेगा। ज्वर से जलती हुई, थकी हुई, मुझ बदहवास ग़रीब असहाय स्त्री के साथ उन कुत्तों ने क्या-क्या करने और न करने योग्य न किया? सारा संसार यह कल्पना भी नहीं कर सकता कि मुझ पर जो बीती और मैंने जो देखा, वह सम्भव भी हो सकता है, पर मेरे साथ तो वह हुआ। जब तक मैं होश में रही और मेरे शरीर में बल रहा, मैंने उन भेड़ियों को रोका। प्रतिकार किया, परन्तु मैं शीघ्र ही बदहवास हो गई और मैं उसी अवस्था में डोली पर लाद कर दिन निकलने से पूर्व ही दिल्ली को रवाना कर दी गई।

८

सेकिण्ड क्लास के ज़नाने डब्बे में मैं अकेली थी, मैंने सब खिड़कियाँ खुलवा दी थीं। सुबह की ठण्डी-ठण्डी हवा से मेरी

तबियत हलकी हुई, पर रात जो मुझ पर अत्याचार हुआ था वह असाधारण था ; पर मैं जानती हूँ कि जगत के मर्द इनसे क्षुभित न होंगे। वेश्या के बाहरी स्वरूप को सभी देखते हैं, वह भीतरी रूप तो हम स्वयं ही देखती हैं। मैं जरा उठ कर देखने लगी, रेल की पटरी के बराबर ही बराबर सड़क थी, उस पर एक मोटर तेजी से दौड़ी चली आ रही थी। मोटर गाड़ी से दौड़ लगा रही थी। मुझे कौतूहल हुआ, मैं एकटक उसे देखने लगी। मैंने देखा, एक स्त्री उसमें बैठी बड़ी बेचैनी से गाड़ी को देख रही है। स्टेशन आया, गाड़ी खड़ी हुई और वह स्त्री घबराई हुई स्टेशन में घुस आई। एक कर्मचारी उसे मेरे डब्बे में बैठा गया। डब्बे में बैठते ही वह हाँफने लगी और दोनों हाथों से मुँह ढँक कर बैठ गई। गाड़ी के चलते ही मैंने उसके पास जाकर कहा—"आपको कुछ तकलीफ है क्या ?" उसने चौंक कर देखा और मुझे देख कर जोर से मेरा हाथ पकड़ कर कहा—"कुछ नहीं, ईश्वर का धन्यवाद है कि मेरी इज्जत बच गई। तुम कहाँ जा रही हो ?"

मैंने कहा—दिल्ली !

"मैं भी वहीं जा रही हूँ। तुम्हारा घर किस मुहल्ले में है और तुम्हारे पति क्या काम करते हैं ?"

मैं क्या जवाब देती, मैं चुपचाप खड़ी रही। कुछ सम्हल कर मैंने कहा—आपको कुछ मदद चाहिए, वह मैं कर सकूँगी। आप कहिए।

"मैं तुम्हारे यहाँ कुछ घण्टे ठहरना चाहती हूँ और अपने पति को तार-द्वारा सूचना देना चाहती हूँ। क्या तुम मेरे लिए इतना कष्ट करोगी ?"

"ज़रूर, परन्तु × × ×" मैं फिर चुप हो गई।

"परन्तु क्या ?"—उसने घबरा कर कहा।

"मैं तवायफ़ हूँ, शायद आपको मेरे घर चलना पसन्द न हो !"—वह स्त्री इस तरह चमकी, जैसे बिच्छू ने डङ्क मारा हो। उसने मेरा हाथ छोड़ दिया, मैं अपनी जगह आ बैठी। कुछ देर सन्नाटा रहा, आत्म-ग्लानि के मारे मैं मर रही थी।

उस स्त्री ने पूछा—कहाँ से आ रही हो ?

"महाराज × × × की महफ़िल से।"

उसने घृणा और क्रोध से मेरी ओर देखा, उसने होंठ काट कर कहा—उस हरामज़ादे को मैं मच्छर की तरह मसल डालूँगी, उसने मुझे भी तुम जैसी ही रण्डी समझा होगा।

मेरे कलेजे में तीर लगा। मैंने धीरज धर कर कहा—मैं उससे घृणा करती हूँ, रात उसने मुझ पर बड़ा ज़ुल्म किया है, हम अभागिनी स्त्रियों की तो सर्वत्र एक ही दशा है। मैं जो हूँ वही रहूँगी, यह तो क़िस्मत है। पर आपकी कोई भी सेवा मैं खुशी से करूँगी, यदि आप चाहें।

उसने मेरी तरफ़ देखा, और कहा—मेरे स्वामी उस स्टेट में इञ्जीनियर हैं। हम लोग पारसी हैं, पर्दा नहीं करतीं। उस पापी ने मुझे और मेरे पति को एकाध बार चाय-पानी के लिए बुलाया था। वे कल से ही कहीं बाहर भेज दिये गए। उसने आज सुबह मुझे बुला भेजा कि साहब आए हैं, यहाँ बैठे हैं। मैं सीधे स्वभाव चली गई, पर वहाँ धोखा था। मेरी इज़्ज़त बचनी थी, मैं ग़ुसलख़ाने की राह भाग कर मोटर में भागी हूँ। मैं सीधी वायसराय के पास जाना चाहती हूँ। मैं दिखा दूँगी कि किसी महिला की आबरू उतारने की कोशिश करना किसी

तबियत हलकी हुई, पर रात जो मुझ पर अत्याचार हुआ था वह असाधारण था ; पर मैं जानती हूँ कि जगत के मर्द इससे क्षुभित न होंगे। वेश्या के बाहरी स्वरूप को सभी देखते है, वह भीतरी रूप तो हम स्वयं ही देखती हैं। मैं जरा उठ कर देखने लगी, रेल की पटरी के बराबर ही बराबर सड़क थी, उस पर एक मोटर तेजी से दौड़ी चली आ रही थी। मोटर गाड़ी से दौड़ लगा रही थी। मुझे कौतुहल हुआ, मैं एकटक उसे देखने लगी। मैंने देखा, एक स्त्री उसमें बैठी बड़ी बेचैनी से गाड़ी को देख रही है। स्टेशन आया, गाड़ी खड़ी हुई और वह स्त्री घबराई हुई स्टेशन में घुस आई। एक कर्मचारी उसे मेरे डब्बे में बैठा गया। डब्बे में बैठते ही वह हाँफने लगी और दोनों हाथों से मुँह ढँक कर बैठ गई। गाड़ी क चलते ही मैंने उसके पास जाकर कहा—"आपको कुछ तकलीफ है क्या ?" उसने चौंक कर देखा और मुझे देख कर जोर से मेरा हाथ पकड़ कर कहा—"कुछ नहीं, ईश्वर का धन्यवाद है कि मेरी इज्जत बच गई। तुम कहाँ जा रही हो ?"

मैंने कहा—दिल्ली !

"मैं भी वहीं जा रही हूँ। तुम्हारा घर किस मुहल्ले में है और तुम्हारे पति क्या काम करते हैं ?"

मैं क्या जवाब देती, मैं चुपचाप खड़ी रही। कुछ सम्हल कर मैंने कहा—आपको कुछ मदद चाहिए, वह मैं कर सकूँगी। आप कहिए।

"मैं तुम्हारे यहाँ कुछ घण्टे ठहरना चाहती हूँ और अपने पति को तार-द्वारा सूचना देना चाहती हूँ। क्या तुम मेरे लिए इतना कष्ट करोगी ?"

"जरूर, परन्तु × × ×" मैं फिर चुप हो गई।

"परन्तु क्या ?"—उसने घबरा कर कहा।

"मैं तवायफ़ हूँ, शायद आपको मेरे घर चलना पसन्द न हो।"—वह स्त्री इस तरह चमकी, जैसे बिच्छू ने डङ्क मारा हो। उसने मेरा हाथ छोड़ दिया, मैं अपनी जगह आ बैठी। कुछ देर सन्नाटा रहा, आत्म-ग्लानि के मारे मैं मर रही थी।

उस स्त्री ने पूछा—कहाँ से आ रही हो ?

"महाराज × × × की महफ़िल से।"

उसने घृणा और क्रोध से मेरी ओर देखा, उसने होंठ काट कर कहा—उस हरामज़ादे को मैं मच्छर की तरह मसल डालूँगी, उसने मुझे भी तुम जैसी ही रण्डी समझा होगा।

मेरे कलेजे में तीर लगा। मैंने धीरज धर कर कहा—मैं उससे घृणा करती हूँ, रात उसने मुझ पर बड़ा ज़ुल्म किया है, हम अभागिनी स्त्रियों की तो सर्वत्र एक ही दशा है। मैं जो हूँ वही रहूँगी, यह तो क़िस्मत है। पर आपकी कोई भी सेवा मैं ख़ुशी से करूँगी, यदि आप चाहें।

उसने मेरी तरफ़ देखा, और कहा—मेरे स्वामी उस स्टेट में इञ्जीनियर हैं। हम लोग पारसी हैं, पर्दा नहीं करतीं। उस पापी ने मुझे और मेरे पति को एकाध बार चाय-पानी के लिए बुलाया था। वे कल से ही कहीं बाहर भेज दिये गए। उसने आज सुबह मुझे बुला भेजा कि साहब आए हैं, यहाँ बैठे हैं। मैं सीधे स्वभाव चली गई, पर वहाँ धोखा था। मेरी इज़्ज़त बचनी थी, मैं ग़ुसलख़ाने की राह भाग कर मोटर में भागी हूँ। मैं सीधी वायसराय के पास जाना चाहती हूँ। मैं दिखा दूँगी कि किसी महिला की आबरू उतारने की कोशिश करना किसी

गुण्डे के लिए कैसा कठिन है, फिर चाहे वह गुण्डा महाराजा ही क्यों न हो ?

इतना कह कर वह लाल-लाल आँखों से मुझे घुरने लगी, मैं अपराधिनी की भाँति थर-थर काँपने लगी। क्या यह आश्चर्य की बात न थी ? एक ऐसी वीर महिला के सामने, जो अपनी इज्जत बचाने को जान पर खेल गई है, मेरी जैसी जन्म-अभागिनी, जो उसी इज्ज़त को बेच कर पेट ही नहीं भरती, शान से रहना भी चाहती है—क्या खड़ी रह सकती थी ? मैं खिड़की में मुँह डाल कर रोने लगी।

वह उठ कर आई, कहा—रोती क्यों हो ? क्या कोई कड़ी बात मेरे मुख से निकल गई। ऐसा हो तो माफ़ करना, मैं आपे में नहीं हूँ।

मैंने उसका आँचल उठा कर आँखों में लगाया, उसे चूमा और फिर मैं भरपेट रोई। मैंने अपना पाप स्वीकार किया—मैंने मुँह फाड़ कर कह दिया। ईश्वर ने जीवन में मुझे सच्चो स्त्री-रत्न के दर्शन करा दिए। ओह ! हम लाखों बेबस नारियाँ इस पवित्र जीवन से वञ्चित हैं, कोई भी माई का लाल इसका उपाय नहीं सोचता !

उसने मुझे छाती से लगाया, प्यार किया। वह पवित्र वीराङ्गना मुझ पतिता वेश्या, अधम अभागिनी को बेटी की तरह दुलार करती दिल्ली तक आई। किसी तरह मेरी कोई सहायता स्वीकार न की। बहुत कहने पर कहा—"मेरे पास रुपए नहीं हैं। तुम्हारे पास हों तो १००) दे दो। ये कड़े रख लो, ६००) के हैं।" मैंने रुपए दे दिए। कड़े लेती न थी, पर वह बिना दिए कब रहती ? वह मेरी आँखों से ओझल हो गई।

९

कृमि-कीट से भी अधम और घृणास्पद वेश्या होकर भी जो मैंने रानी का गौरवास्पद पद छीनना चाहा, उस धृष्टता का जो दण्ड मिलना उचित था, वह मुझे मिला।

मैं जिस रूप पर इतराती थी और जिसकी सर्वत्र प्रशंसा थी, महाराजा भी जिसे देखकर थकते न थे, वह रूप अब निस्तेज हो गया। महाराजा पर उसका नशा नहीं होता, वे और नवीनाओं की खोज में लगे और मुझे अनुचरों के सुपुर्द कर दिया। हाय री लाञ्छना, वह सब बड़ी-बड़ी आशाएँ मृग-मरीचिका निकल गईं। जिन्हें कल मैं तुच्छ समझकर पीकदान उठवाती थी, वे महाराज के सङ्केत से मेरे शरीर और आत्मा के अधिकारी हो गए। जैसे पवित्र पाकशाला में विविध स्वादिष्ट खाद्य-पदार्थों से भरा हुआ थाल—महाराज के छक कर जीम चुकने पर जूठन भङ्गी को मिलती है, मेरी दशा भी उसी पत्तल के समान थी। महाराज के आदेश से उन्हीं के सम्मुख उनके विनोदार्थ मुझे उनके नीच पशु सम पार्श्वदों से जघन्य कुकर्म बिना उज्र कराना और महाराज के लिए आई हुई नवीनाओं के के बीच कुटनी का काम करना!"

क्या किसी स्त्री का हृदय बिना फटे रह जाय? परन्तु मेरा हृदय फट कर भी न फटा। मैंने वह सब किया, जो मुझे आदेश दिया गया। उस दिन महफ़िल में आनन्दी के रूप को देखकर महाराज और उनके कामुक कुत्ते उस पर लट्टू हो गए।

और उस ग़रीब असहाय बालिका को उनके पास लाने का कार्य करना पड़ा मुझे? इच्छा हुई कि अभी विष खा लूँ; फिर सोचा, क्या मेरे मर जाने पर आज कोई रोवेगा? इस रस-रङ्ग में ज़रा भी विघ्न पड़ेगा? आनन्दी को भी क्या कोई बचा सकेगा?"

यह तो सम्भव नहीं है। मैं उसे चुमकार-पुचकार कर ले गई। वही हुआ जो भय था, वह उस दिन से शय्या पर पड़ी है, उसके शरीर का बूँद-बूँद रक्त निकल गया, पर रक्त प्रवाह बन्द होता ही नहीं। डाक्टर कहते हैं कि वह बचेगी नहीं, उसे खाँसी और ज्वर भी हो गया है, और वह सूख कर काँटा हो गई है। मैं उसे देखने गई थी। क्या उसका हाल बयान करूँ? वह अब उठ-बैठ भी नहीं सकती, अभी उसकी आयु की बालिकाएँ कुमारी हैं और वह सभी कुछ भोग चुकी, सभी कुछ पा चुकी, साथ ही परलोक के सभी अधिकार खो चुकी। आज नहीं तो कल वह जायगी, उस सर्व-शक्तिमान् पिता के पास, वह दयालु ईश्वर क्या अब भी उसे और दण्ड देगा! उसने पाप किया, पाप अपना जीवन बनाया, पाप में वह जी और मरी; पर पाप को उसने पाप समझा कब? नारी-जीवन पाकर, नारी-शरीर, नारी के सभी गुण पाकर, वह बेचारी नारी-गरिमा से बिलकुल वञ्चित रही!!

हाँ, मैं इस पर विचार करूँगी कि यह वेश्यावृत्ति क्या वस्तु है। और इसका दायित्व किस पर है, इसके नाश का क्या कोई उपाय नहीं है? उन पुरुषों को धिक्कार है, जो स्त्रियों के रक्षक होकर भी स्त्री-जाति के इस कलङ्क को नाश करने का ज़रा भी उद्योग नहीं करते। आह! आनन्दी, तेरी जैसी कितनी प्यार

की पुतलियाँ इसी तरह कुचली गईं। ये कमीने धनी, धन के बदले हमें प्रलोभनों में फँसाते हैं और हमारा यह लोक और परलोक नष्ट करते हैं। और खेद तो यह है कि इसका ज्ञान हमें तब होता है, जब हमारे बचने के सभी मार्ग बन्द हो जाते हैं। मैं क्या कर सकती थी, मैं उसके लिए अच्छी तरह रोकर चली आई!

१०

मुझे मरने में बड़ा सुख है। रेल वाली उस महिला का हाथ मेरे मस्तक पर है। वह मुझे मृत्यु के बाद मार्ग बताएगी। अब जितना जल्द यह घृणित शरीर छूटे, अच्छा है। मैंने वे पलँग, साड़ी, शाल, आभूषण—सब त्याग दिए। मैं महादरिद्र की तरह मर रही हूँ, पर मुझे गर्व है कि इस शरीर को छोड़ अब कोई अपवित्र वस्तु मेरे पास नहीं। और जिस स्वेच्छा से मैंने वे सब सामान त्यागे हैं, उसी तरह मैं इस शरीर को त्यागने को उत्सुक हूँ। इसमें मुझे ज़रा भी दुःख नहीं, पर खेद तो यह है कि अब स्नेहशीला हीरा के दर्शन न होंगे। ऐसी प्रेम और त्याग की अप्रतिभ मूर्ति, सौन्दर्य की राशि पृथ्वी में कितनी उत्पन्न होती हैं? सुना है कि वह पागल हो गई है और उस दिन आत्म-घात की इच्छा से छत से कूद पड़ी थी। आखिर कहाँ तक सहन करती? जिसे उसने तन, मन, शरीर दिया, उसी ने उसे यहाँ तक गिराया। मैं मरती हूँ, पर पुरुष-जाति पर श्राप देती हूँ कि इस पुरुष-जाति का नाश हो, इसका वंश नष्ट हो, इसकी मिट्टी ख्वार हो, जो असहाय अबलाओं की

पवित्रता और जीवन को अपनी वासनाओं पर क़ुर्बान करते हैं !! यह पुरुष-जाति सदा—रोग, शोक, दुःख दरिद्र, पाप, यन्त्रणा में अनन्तकाल तक पड़ी रहे !!!

———

मौत के पंजे में जिन्दगी की कराह

मूल्य ३)

पुस्तक में लेखक के क्रोध की धधकती ज्वाला है। सर्वथा मौलिक, क्रान्तिकारी और नवीन विचार धारा। पुस्तक में कुल सत्रह अध्याय हैं—

१—या तो मनुष्य मनुष्य को खाय या भूखा मर जाय। २—'देश' खूनी देवता। ३—'राष्ट्रीयता' मनुष्य के खून के गारे से खड़ी की गई इमारत। ४—'स्वाधीनता' गुलामी की आवाज। ५—'धर्म' धोबी का कुत्ता। ६—'ईश्वर' जिसा वैसा। ७—'देवता' ईश्वर के भाई-भतीजे। ८—'श्रद्धा' अन्धी बुढ़िया। ९—'दार्शनिक' अक्ल के आशिक मजनू। १०—'विज्ञान' मनुष्य का मुक्तिदाता या मृत्युदूत। ११—'स्त्री' जिन्दा दौलत। १२—'गणराज्य' जनता का खून चूसने वाला खटमल। १३—'साहित्य' दिमागी दुराचार। १४—'मनुष्य' गान्धी का अपूजित देवता। १५—'सत्य' जनतन्त्र की सीधी राह। १६—'अहिंसा' सत्य की राह दिखाने वाली पथदर्शिका। १७—युद्ध का देवता मर गया।



उपन्यास

१—वैशाली की नगर वधू (२ भाग) १२)
२—नरमेध ३)
३—हृदय की प्यास ३)
४—हृदय की परख २)
५—आत्मदाह ४।।)
६—नीलमणि २)
७—पूर्णाहुति २।।)
८—रक्त की प्यास १।।)
९—बहते आँसू १।।)
१०—मंदिर की नर्तकी २।।)
११—दो किनारे १।।)
१२—अपराजिता २)

कहानी संग्रह

१३—सोने की पन्नी १)
१४—[illegible] १)
१५—कैदी १)
१६—दुखवा मैं कासों कहूँ मोरी सजनी १)
१७—आवारागर्द १)
१८—[illegible] १)
१९—सिंहगढ़ विजय १)
२०—[illegible] १।।)
२१—बुलबुल हजारदास्तान १)
२२—लम्बग्रीव १)
२३—[illegible] १)
२४—पीरनाबालिग १)
२५—[illegible] १)
२६—मुगल बादशाहों की अनोखी बातें १)
२७—[illegible] १)
२८—बर्मा रोड १)

नाटक

२९—उत्सर्ग १)
३०—राजसिंह २)
३१—अजीतसिंह २)
३२—छत्रसाल २)
३३—अमरसिंह २)
३४—गान्धारी २)
३५—श्रीराम १।।)
३६—[illegible] २)
३७—मेघनाद २)

एकांकी

३८—पाँच एकांकी १।।)
३९—राधाकृष्ण १)
४०—सीताराम २)
४१—क्षमा १)
४२—सत्यव्रत हरिश्चन्द्र १)
४३—कुणाल १)
४४—[illegible] १।।)
४५—धर्मपुत्र २।।)

गद्यकाव्य

४६—अन्तस्तल २।।)
४७—तरलाग्नि २)
४८—मरी खाल की हाय २)
४९—कालिंदी के कूल पर २)
५०—[illegible] २)

साहित्य

५१—हिन्दी भाषा और साहित्य का इतिहास (वृहत्) १०)
५२—विद्यार्थी संस्करण ७।।)
५३—हिन्दी की तेरह शताब्दियाँ २)
५४—साहित्य सम्पदा १)

चिकित्सा, स्वास्थ्य और ...

५५—
५६—
५७—
५८—
५९—
६०—सुगम चिकित्सा ।।)
६१—आरोग्य पाठावलि (पहिला भाग) १)
६२—आरोग्य पाठावलि (दूसरा भाग १)
६३—अमीरों के रोग २)
६४—कुमारिकाओं के गुप्त पत्र २)
६५—अविवाहितों के पेचीदा गुप्त पत्र २)
६६—अधेड़ावस्था का दाम्पत्य २)
६७—वृद्धावस्था के रोग ३)
६८—[illegible] ३)
६९—आहार और जीवन ५)
७०—आप कैसे भरपूर नींद सो सकते हैं ३)
७१—बच्चे कैसे पाले जायँ ४)
७२—बीबी का रसोईघर १।।)
७३—स्त्री सुबोध ४)
७४—सुखी जीवन ३)
७५—विवाहित जीवन का आनन्द २)
७६—पत्नी प्रदर्शिका २)
७७—आप अधिक सुन्दर कैसे बन सकती हैं ३)

धर्म-समाज और राजनीति

७८—धर्म के नाम पर ३)
७९—हिन्दू-राष्ट्र का नव निर्माण ५)
८०—भारत में इस्लाम ५)
८१—बुद्ध और बौद्ध-धर्म ३)
८२—हिन्दू विवाह का इतिहास ४)
८३—जीवन के दस भेद १)
८४—हमारे खास दिन ४)
८५—वेद और उनका साहित्य ३)

पुस्तक मिलने का पता—

२२।११ कबीरचौरा, बनारस।